संस्कृत प्रचार पुस्तक माला सं० ४८

हास्य-विनोद-वाटिका

संस्कृत साहित्य के विविध ग्रन्थों से संकलित
कतिपय हास्यविनोदपूर्ण मनोहर
कविताओं का संग्रह







सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

वा रा ण सी

संस्कृत प्रचार पुस्तक माला सं० ४८

हास्य-विनोद-वाटिका

संस्कृत साहित्य के विविध ग्रन्थों से संकलित
कतिपय हास्यविनोदपूर्ण मनोहर
कविताओं का संग्रह



सम्पादक
वासुदेव द्विवेदी शास्त्री
(सम्पादक-संस्कृत प्रचार पुस्तक माला)



सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय
वा रा ण सी

प्रकाशक—

सार्वभौम संस्कृत प्रचार कार्यालय

डी ३८/११० हौजकटोरा, वाराणसी



द्वितीय आवृत्ति—एकहजार पाँच सौ प्रतियाँ

मूल्य—पाँच रुपये मात्र



मुद्रक—

बैजनाथ प्रसाद

कल्पना प्रेस

रामकटोरा रोड, वाराणसी

प्रकरण-सूची

हास्यं सुध्युपास्यम्

नैवाप्नुवन्ति मुनयो रुदितेन मोक्षं
स्वर्गायतिं न परिहासकथा रुणद्धि ।
तस्मात् प्रतीतमनसा हसितव्यमेव
वृत्तिं बुधेन खलु कौत्कुचीं विहाय ।।

(पादताडितकम्)

मुनियों को रोने-धोने से मोक्ष नहीं मिलता और स्वर्ग में जाने वालों के लिए हास-परिहास करने से स्वर्ग का रास्ता भी नहीं बन्द होता । इसलिए बुद्धिमान लोगों को चाहिए कि वे मुँह बना कर या लटका कर बैठने की वृत्ति छोड़ कर खूब हँसे और खुल हँसें ।

आवश्यक निवेदन

मानवजीवन की स्वाभाविक सुखद प्रवृत्तियों में हास्य-विनोद का महत्त्वपूर्ण स्थान है एवं इससे मनुष्य अनेक प्रकार से लाभान्वित होता है। यह न केवल मनोरञ्जन और चिन्ता, शोक एवं विषाद आदि के दूर करने का साधन है आपितु इससे स्वास्थ्यरक्षा, वैयक्तिक तथा सामाजिक त्रुटियों के सुधार तथा स्वस्थ समाज के निर्माण में भी बहुत सहायता मिलती है। हास्य एवं विनोद के कारण मनुष्य में स्फूर्ति आती है, उत्साह बढ़ता है और कर्तृत्वशक्ति का भी विकास होता है। हास्य-विनोद के प्रेमी जन जहाँ स्वयं आनन्द का अनुभव करते हैं वहाँ दूसरों को भी आनन्दित करते हैं और इसीलिए समाज में उनका व्यक्तित्व विशेष आकर्षक होता है और वे अधिक लोकप्रिय होते हैं। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि विना शारीरिक श्रम एवं विना एक पैसे के व्यय के मनुष्य को सुखी, प्रसन्न तथा हमेशा तरोताजा रखने का यदि कोई सहज साधन है तो वह केवल हास्य एवं विनोद ही है।

मनुष्य की इस चिरन्तन प्रवृत्ति के स्थायित्व एवं महत्त्व को परख कर हा भारतीय साहित्यशास्त्र के आचार्यों ने हास्य को भी रसों में एक विशिष्ट स्थान दिया है तथा उसकी उत्पत्ति के कारणों एवं भेदोप-भेदों का विशद विवेचन किया है। इसके साथ ही संस्कृत के कवियों ने हास्यरस की रचनाओं का भी विपुल मात्रा में निर्माण किया है। नाटक के दश भेदों में भाण एवं प्रहसन दोनों ही हास्यप्रधान रचनायें हैं। नाटकों के दूसरे भेद वीथी के जो उद्घातक, अवलगित, छल एवं प्रपञ्च आदि त्रयोदश भेद माने गये हैं उनमें भी हास्य का पर्याप्त अवकाश

होता है। कैशिकी वृत्ति के नर्म, नर्मस्फूर्ज, नर्मस्फोट तथा नर्मगर्भ ये चारों अङ्ग भी हास्यरस के अनुरूप वातावरण के निर्माण में सहायक होते हैं। इनके अतिरिक्त समस्त नाटकों में जो विदूषक का पाठ होता है वह तो हास्य, व्यंग्य, एवं विनोद के लिए प्रसिद्ध ही है। नाटकों के अतिरिक्त काव्य, कथा, आख्यायिका, सुभाषित, शृङ्गार, नीति, प्रबन्ध, एवं संगीत का विशाल साहित्य भी हास्य-विनोद की पर्याप्त सामग्री से भरा हुआ है। धर्मप्रधान साहित्य रामायण, महाभारत एवं पुराण आदि, गम्भीर चिन्तनप्रधान दर्शनशास्त्र एवं महाभाष्य आदि व्याकरण जैसे नीरस विषय के ग्रन्थों में भी स्थान-स्थान पर हास्य-बिनोदपूर्ण उक्ति-प्रत्युक्तियों के प्रभूत उदाहरण मिलते हैं। यदि वैदिक बौद्ध एवं जैन संस्कृत एवं प्राकृत साहित्य के विशाल भण्डार के समस्त हास्य-विनोदमय श्लोकों, सुभाषितों, कथाओं एवं कथोपकथनों का संग्रह किया जाय तो महाभारत जैसा महान् ग्रन्थ तैयार हो सकता है और तभी इसका पूर्णरूप से परिज्ञान हो सकता है कि संस्कृत के साहित्यकार कितने हाय-विनोदप्रेमी थे और संस्कृत का साहित्य हास्यरस की दृष्टि से भी कितना धनी है। इस समय भी सामान्य रूप से जितनी हास्य-विनोद-सामग्री उपलब्ध है वह भी मात्रा एवं गुण दोनों ही दृष्टियों से कम महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकती।

परन्तु दुःख के साथ कहना पड़ता है कि जो कुछ हास्य-विनोद-सामग्री संस्कृत के वर्तमान पाठ्य ग्रन्थों में तक उपलब्ध है उसका भी संस्कृतसमाज में समुचित परिज्ञान, उसका रसके रूप में अनुशीलन तथा हास्य-विनोद-गोष्ठी के रूप में प्रयोग नहीं के बराबर है। इसीलिए संस्कृत साहित्य के इस मनोरञ्जक अंग से जितना हमें लाभ उठाना चाहिए, सर्वसाधारण को जितना लाभान्वित करना चहिए तथा संस्कृत के प्रचार की दृष्टि से इसका जितना उपयोग किया जाना चाहिए वह नहीं हो रहा है। इसीलिए बहुत लोगों का यह विश्वास है कि संस्कृत

गम्भीर चिन्तन की भाषा है और इसीलिए उसमें हास्य की सामग्री बहुत ही कम है और यदि है भी तो वह उत्कृष्ट कोटि की नहीं है, बहुत ही मोटी और हलकी है।

ऐसी स्थिति में यह परम आवश्यक है कि संस्कृत समाज में जैसे शास्त्रार्थ, वाद-विवाद, भाषण-प्रतियोगिता एवं नाटक आदि का आयोजन किया जाता है उसी प्रकार कभी-कभी हास्य-विनोद-गोष्ठी का भी आयोजन किया जाय और उसमें हास्यरस तथा उसके समस्त प्राचीन एवं नवीन भेदों पर शास्त्रीय परिचर्चा के साथ उनके उदाहरण भी प्रस्तुत किये जाँय। मेरी दृष्टि में यह भी आवश्यक है कि नाटकों के अतिरिक्त भाणों एवं प्रहसनों के भी अभिनय किये जाँय तथा लोकरंजन की दृष्टि से उनकी उपयोगिता का भी परीक्षण किया जाय। इसके लिए हमने वाराणसी में एक 'संस्कृत भाण मण्डली' के संगठन एवं चालन का भी निश्चय किया है जिससे कि इस उपेक्षित अंग का भी प्रयोग हो सके। यदि संस्कृतसमाज हास्य-विनोद-पूर्ण कविताओं के पाठ तथा भाण प्रहसन आदि रूपकों के अभिनय का सफल आयोजन कर सके तो सर्वसाधारण में संस्कृत को पहुँचाने तथा उसके प्रति लोकरुचि उत्पन्न करने में भी बड़ी सहायता मिल सकती है। परन्तु यह काम तभी हो सकता है जब इसके उपयुक्त सामग्री का संकलन प्रकाशित किया जाय और उसे सबके लिए सुलभ बनाया जाय।

इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए हास्य-विनोद-सामग्री का संकलन एवं उसका प्रकाशन भी इस संस्थान का प्रमुख उद्देश्य रहा है। तदनुसार "संस्कृत प्रहसनम्" तथा "बाल विनोद माला" नाम से कार्यालय द्वारा दो पुस्तकें प्रकाशित की जा चुकी हैं जिनमें क्रमशः हास्य-विनोद-पूर्ण अभिनयों, कथोपकथनों तथा प्रश्नोत्तरपूर्ण श्लोकों का संग्रह प्रकाशित किया गया है। इसी शृंखला में अब यह तीसरी पुस्तक

प्रस्तुत की जा रही है जिसमें संस्कृत के विभिन्न ग्रन्थों से संकलित कर भिन्न-भिन्न प्रकार के कुछ हास्य-विनोदपूर्ण श्लोकों का सानुवाद संग्रह प्रकाशित किया जा रहा है। इन तीनों पुस्तकों का यदि समस्त संस्कृतपाठशालाओं तथा स्कूल-कालेजों के संस्कृतविभाग में अभ्यास तथा प्रयोग करने का कार्यक्रम अपनाया जाय और आसपास में हास्य-विनोद-गोष्ठी का आयोजन कर उसे सर्वसाधारण में प्रस्तुत किया जाय तो प्रचार की दृष्टि से संस्कृत की बहुत बड़ी सेवा हो सकती है।

अतः संस्कृत के समस्त अध्यापकों, छात्रों तथा संस्कृतानुरागी सज्जनों से विनम्र अनुरोध है कि वे इन पुस्तकों के द्वारा स्वयं आनन्द उठायें, दूसरों को भी आनन्दित करें तथा संस्कृत को लोकप्रिय बनाने और घर-घर पहुँचाने में सहयोग प्रदान करने की कृपा करें। इसके साथ ही पाठकों से यह भी निवेदन है कि इस पुस्तक में हास्य के सहकारी रूप में जो कुछ श्रृंगार तथा निन्दा-आक्षेपसूचक श्लोक प्रकाशित हैं उनका वे अवसर के अनुरूप ही पाठ एवं प्रयोग करने की कृपा करेंगे।

२०/१२/१९८४ ई०

विनम्र निवेदक :

सम्पादक

हास्य-विनोद-वाटिका

१—व्यंग्य नमस्कार

कलियुग को नमस्कार

यत्र भार्यागिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम् ।
यत्र स्वप्रतिभा मानं तस्मै श्रीकलये नमः ।।

जहाँ स्त्री के वचन ही वेदवाक्य माने जाते हैं, जहाँ धर्म ही अर्थोपार्जन का साधन माना जाता है और जहाँ अपनी प्रतिभा ही सर्वोच्च प्रमाण के रूप में मानी जाती है, उस कलियुग को नमस्कार !

बिना सींग के बैल को नमस्कार

उन्निद्र-कन्दलदलान्तर-लीयमान-
गुञ्जन्मदान्धमधुपाञ्चित-मेघकाले ।
स्वप्नेऽपि यः प्रवसति प्रविहाय कान्तां
तस्मै विषाणरहिताय नमो वृषाय ।।

आकाश में काले-काले बादलों की घटा घिरी हुई हो और खिले हुए कन्दलों के भीतर मतवाले मधुकर मन्द-मन्द गुञ्जन कर रहे हों,

ऐसे सुहावने समय में भी जो व्यक्ति अपनी प्रियतमा को छोड़ कर परदेश जाता है वह मनुष्य नहीं, साक्षात् विना सींघ का बैल है। ऐसे विषाणरहित वृषभ को नमस्कार !

मुसल और खल को नमस्कार

कुरुते स्वमुखेनैव बहुधान्यस्य खण्डनम् ।
नमः पतनशीलाय मुसलाय खलाय च ।

जो अपने मुँह से ही बहुधान्य[1] का खण्डन किया करता है उस पतनशील (हमेशा गिरते ही रहने वाले) मुसल और खल को नमस्कार !

भगवान् मकरध्वज को नमस्कार

शम्भु-स्वयम्भु-हरयो हरिणेक्षणानां
येनाक्रियन्त सततं गृहकुम्भदासाः ।
वाचामगोचर - चरित्र - पवित्रिताय
तस्मै नमो भगवते मकरध्वजाय ।।

जिसने शम्भू, स्वयम्भु (ब्रह्मा) और विष्णु आदि प्रमुख देवताओं को भी मृगनयनी स्त्रियों का घर में पानी भरनेवाला दास जैसा बना रखा है उस वाणी से अवर्णनीय विचित्र चरित्र से विभूषित भगवान् मकरध्वज (कामदेव) को हमारा नमस्कार है।

---

१. 'बहुधान्यस्य' पद के यहाँ दो अर्थ हैं। मुसल पक्ष में 'बहुत धान्य का' तथा खल के पक्ष में 'बहुधा अन्य का' ऐसा अर्थ होता है।

वामलोचनाओं को नमस्कार

दृशा दग्धं मनसिजं जीवयन्ति दृशैव याः ।
विरूपाक्षस्य जयिनीस्ताःस्तुमो वामलोचनाः ।।

शिवजी द्वारा आँख से जलाये हुए कामदेव को जो अपनी आँखों से ही जिला देती हैं उन शङ्करजी को भी जीतनेवाली वामलोचनाओं की हम स्तुति करते हैं !

उस विचारशील देश को नमस्कार

छेदश्चन्दनचूतचम्पकवने रक्षा करीरद्रुमे
हिंसा हंसमयूरकोकिलकुले काकेषु नित्यादरः ।
मातंगेन खरक्रयः समतुला कर्पूर-कार्पासयोः,
एषा यत्र विचारणा गुणिगणे देशाय तस्मै नमः ।।

जिस देश के गुणीजनों द्वारा चन्दन, आम और चम्पक के रमणीय बनों को काटकर करीर की झाड़ियों की रक्षा की जाती हो, जहाँ हंस, मयूर और कोकिलों को मारकर कौओं का आदर किया जाता हो, जहाँ हाथी को बेचकर गदहा खरीदा जाता हो और जहाँ कपूर और कपास की कीमत बराबर लगायी जाती हो, उस देश को बार-बार नमस्कार और इस उत्तम विचार के लिए वहाँ के गुणिजनों, अधिकारियों और विशेषज्ञों के लिए भूरि-भूरि धन्यवाद !

पिशुनों को नमस्कार

पिशुनेभ्यो नमस्तेभ्यो यत्प्रसादात् वियोगिनः ।
दूरस्था अपि जायन्ते सहस्र - श्रोत्र - चक्षुषः ।।

उन पिशुन लोगों को—चुगली करने वालों को—नमस्कार है जिनकी कृपा से बहुत दूर-दूर रहने वाले भी राजकर्मचारी और अधिकारी पुरुषों के हजार-हजार कान और हजार-हजार आँखें हो जाती हैं।

लक्ष्मी को नमस्कार

क्रोधस्तेज इति ग्रहः स्थितिरिति क्रीडेति दुश्चेष्टितं
माया च व्यवहारकौशलमिति स्वाच्छन्द्यमित्यज्ञता ।
मौखर्यं स्फुटवादितेति धनिनामग्रे बुधैर्यद्वशात्
दोषोऽपि व्यपदिश्यते गुणतया तस्यै नमोऽस्तु श्रिये ।।

जिस लक्ष्मी के कारण बड़े-बड़े विद्वान् भी धनियों के आगे उनके क्रोध को तेज, उनके हठ को दृढ़ता, उनकी दुश्चेष्टाओं को क्रीड़ा, उनके छल-कपट को व्यवहारकुशलता, उनके अज्ञान को स्वच्छन्दता तथा उनकी मुखरता को स्पष्टवादिता कह कर उनके सभी दोषों का गुण के रूप में बखान किया करते हैं उस सर्वदोषहर महालक्ष्मी को नमस्कार !

—:*:—

२–दैवी जगत् के दृश्य

—:*:—

देवता भी ससुराल के प्रेमी

असारे खलु संसारे सारः श्वसुरमन्दिरम् ।
हरो हिमालये शेते हरिश्शेते महोदधौ ॥

इस असार संसार में एकमात्र ससुराल ही सारवस्तु है। तभी तो शंकरजी हिमालय में रहते हैं और विष्णु भगवान् समुद्र में। क्योंकि शंकरजी की ससुराल हिमालय और विष्णु भगवान् की ससुराल समुद्र है।

देवताओं को भी खटमलों का आतङ्क

हरो हिमालये शेते हरिः शेते महोदधौ ।
कमले कमला शेते सर्वे मत्कुणशङ्कया ॥

भगवान् शंकर, भगवान् विष्णु और भगवती लक्ष्मी ये सभी देवता खटमलों के डर से पहाड़, समुद्र और फूल में शयन करते हैं। अर्थात् शंकर हिमालय में सोते हैं, विष्णु समुद्र में सोते हैं तथा लक्ष्मी कमल में सोती हैं।

विधाता को कोई गुरु नहीं मिला

गन्धः सुवर्णे फलमिक्षुदण्डे नाकारि पुष्पं खलु चन्दनेषु ।
विद्वान् धनी नृपतिर्दीर्घजीवी धातुः पुरा कोऽपि न बुद्धिदोऽभूत् ।।

ब्रह्मा ने सुवर्ण बनाया पर उसमें गन्ध नहीं दिया, ईख बनायी पर उसमें फल नहीं लगाया, चन्दन का वृक्ष बनाया पर उसमें फूल नहीं होने दिया, विद्वान् बनाया पर उसे न तो धनाढ्य बनाया और न दीर्घजीवी। सृष्टि में यह भयङ्कर कमी क्यों रह गयी? मालूम पड़ता है कि विधाता को वैसी बुद्धि देने वाला कोई गुरु नहीं मिला!

ब्रह्मा जी भी तमाखू के समर्थक

बिडौजाः पुरा पृष्टवान् पद्मयोनिं धरित्रीतले सारभूतं किमस्ति ।
चतुर्भिर्मुखैरुत्तरं तेन दत्तं तमालं तमालं तमालं तमालम् ।।

किसी समय ब्रह्मलोक में जाकर इन्द्र ने ब्रह्माजी से यह प्रश्न किया कि भूलोक की वस्तुओं में सबसे उत्तम और सार वस्तु क्या है? इस पर ब्रह्माजी ने अपने एक मुँह से नहीं, चारों मुँह से तुरत उत्तर दिया कि—तमाखू, तमाखू, तमाखू और सिर्फ तमाखू! मानों पहले से ही यह ब्रह्माजी का सुनिर्णीत और पक्का मत था!

विधाता की मूढ़ता

कस्तूरिकां तृणभुजामटवीचराणां
निक्षिप्य नाभिषु चकार च तान् वधार्हान् ।

मूढो विधिः सकलदुर्जनलोलजिह्वा—
मूले स्म निक्षिपति चेत् सकलोपकारः ॥

जंगलों में शिकारियों द्वारा बेचारे निर्दोष हरिणों की हत्या देख कर किसी सहृदय व्यक्ति ने कहा—

वेचारे हरिण जंगलों में रहते हैं और तिनके खाकर जीवन-निर्वाह करते हैं। किसी का कुछ नुकसान नहीं करते। फिर भी वे इसलिए मारे जाते हैं कि विधाता ने उनकी नाभि को कस्तूरी की उत्पत्ति का स्थान बना दिया है। पर यह विधाता की कितनी बड़ी भूल है? यदि वे इस कस्तूरी को हरिणों की नाभि में न रखकर दुर्जनों और चुगले लोगों की चंचल जिह्वा की जड़ में रख दिये होते तो इससे सब लोगों का महान् उपकार होता। अर्थात् कस्तूरी के लिए ऐसे सभी लोगों की जीभ ही काट ली जाती और तब न उनको जीभ होती और न वे इधर-उधर चुगली कर पाते।

लक्ष्मी का एक भयङ्कर दोष

लक्ष्मि क्षमस्व वचनीयमिदं मयोक्तम्
अन्धीभवन्ति पुरुषास्त्वदुपासनेन।
नो चेत्कथं कमलपत्रविशालनेत्रो
नारायणः स्वपिति पन्नगभोगतल्पे ॥

एक व्यक्ति लक्ष्मी के ऊपर एक आरोप लगाते हुए कहता है—

हे लक्ष्मि! क्षमा करना, तुम में यह बड़ा भारी दोष है कि जो तुम्हारी उपासना करते हैं वे सब अन्धे हो जाते हैं। यदि ऐसी बात न होती तो कमलपत्र के समान विशाल नेत्र वाले नारायण सर्प के भयङ्कर

शरीर पर शयन क्यों करते ? अर्थात् तुम्हारे ही संसर्ग से उन्हें भी नहीं दीखता और सर्प के शरीर को गद्दा समझ कर वे उसी पर सो जाते हैं !

देवता भी विश्वास करने लायक नहीं

कस्मै किं कथनीयं कस्य मनःप्रत्ययः कार्यः ।
रमयति कुञ्जकुटीरे गोपवधूटीं परं ब्रह्म ॥

किसको क्या कहा जाय और किसके मन पर विश्वास किया जाय ? देखिये तो सही, खुद ही परब्रह्म भी कुञ्जों और झाड़ियों में गोपयुवतियों के साथ रमण करता है ? फिर औरों को क्या कहा जाय ?

लक्ष्मीवानों को दूसरों की क्या परवाह ?

लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम् ।
शेषे धराभरक्लान्ते शेते नारायणः सुखम् ॥

जिनके पास लक्ष्मी होती हैं वे लोग प्रायः दूसरों के कष्ट को नहीं समझते। देखिये न ! जो शेष पृथ्वी के भार से स्वयं दबे हुए और दुःखी रहते हैं उन्ह ं पर नारायण बड़े आराम से शयन करते हैं !

गरीबों के देवता शंकर ही

मूर्त्तिमृ्दा विल्वदलेन पूजा अयत्नसाध्यं वदनञ्च वाद्यम् ।
फलं च यद्‌ यन् मनसोऽभिलाषो निःस्वस्य विश्वेश्वर एव देवः ॥

मिट्टी से ही मूर्ति बन जाती है, बेल के पत्ते से ही पूजा हो जाती है तथा बिना मेहनत के ही मुँह बजा देने से बाजे का काम हो जाता

है। फिर इसी पूजा से जो-जो मन की अभिलाषायें होती हैं, सब पूरी हो जाती हैं। इसलिए यदि कोई गरीबों का देवता हो सकता है तो वह एकमात्र शंकरजी ही हो सकते हैं। इतना सस्ता देवता और कौन होगा ?

अपने घर की बिगड़ी हालत देखकर भगवान् शंकर ने भस्म रमाई !

एका भार्या समररसिका निम्नगा च द्वितीया
पुत्रोऽप्येको द्विरदवदनो षड्मुखश्च द्वितीयः।
नन्दी भृङ्गी च कपिवदनो वाहनं पुङ्गवेशः
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं भस्मदेहो महेशः ॥

शंकरजी की दो भार्याएँ ठहरीं। उनमें से एक को तो लड़ाई से ही फुरसत नहीं। आज महिषासुर से लड़ाई तो कल रक्तबीज से। और जो दूसरी स्त्री हैं उनकी चाल हमेशा ही नीचे की ओर है। लड़के भी दो, पर दोनों ही विचित्र! एक का मुँह हाथी का और दूसरे के एक नहीं छः-छः मुख! नन्दी एवं भृङ्गी नाम के दो नौकर, सो दोनों ही का मुँह बन्दर के समान! किसी की सूरत ठीक नहीं! और सवारी ? न हाथी न घोड़ा, बसहा बैल! अपने परिवार की इस विचित्र और बिगड़ी हुई हालत को देखकर शंकरजी भस्म रमा कर जोगी हो गये!

भगवान् शंकरजी के दरबार में भी प्रार्थना-पत्र का पहुँचना कठिन

कलङ्की शीतांशुः कुटिलहृदया सापि तटिनी
पशुर्नन्दी सोऽयं कठिनहृदया शैलतनया।

निषेधादन्येषां सततसमवेते दयितया
कृतां वा मद्भक्ति भव भवति विज्ञापयति कः ।।

एक भक्त शंकरजी से कहता है कि मेरे हृदय में भले ही आपके प्रति अगाध भक्ति हो और भले ही उत्तम से उत्तम स्तुति-प्रार्थना लिखूँ पर कठिनाई यह है कि इसे सीधे आपके पास पहुँचाया कैसे जाय ? क्योंकि आपके गण में ऐसा कोई भला आदमी नहीं जो यह काम ठीक तरह से कर सके । कारण यह कि-—

आपके साथ रहने वाले एक व्यक्ति चन्द्रमा हैं जो पहले से ही कलङ्की हैं । आपकी संगिनी एक गंगा हैं जो भारी कुटिलहृदया हैं । जो एक नन्दी हैं वे तो जानवर ही ठहरे । जो आपकी अर्धाङ्गिनी हैं पार्वती, वे तो पर्वत की पुत्री ही हैं, फिर उनके हृदय की कठिनता का क्या कहना ! इन लोगों के अतिरिक्त और जो कुछ व्यक्ति हैं, उनके भीतर जाने पर बराबर रोक लगी रहती है, क्योंकि भीतर तो आप सदा अपनी प्रियतमा के साथ विराजमान रहते हैं । ऐसी स्थिति में मेरे भगवान् ! आप ही बताइये कि मैं अपनी प्रार्थना आप तक कैसे पहुँचा सकूँ ? आप तो आजकल के साहबों से भी दो कदम आगे बढ़ गये हैं !

शंकरजी को केवल अन्नपूर्णा का ही भरोसा

स्वयं पञ्चमुखः पुत्रौ गजानन-षडाननौ ।
दिगम्बरः कथं जीवेद् अन्नपूर्णा न चेद् गृहे ।।

शंकरजी के स्वयं पाँच मुंह हैं । दो पुत्र हैं जिनमें एक भी साधारण मुँह वाला नहीं । एक का मुँह हाथी का है तो दूसरे के छः-छः मुँह हैं । इस प्रकार १२ मुँह खाने वाले हैं पर धन-दौलत की दृष्टि से

शंकरजी दिगम्बर ही ठहरे। अर्थात् बिल्कुल निर्धन। ऐसी स्थिति में यदि उनके घर में अन्नपूर्णा न होतीं तो उनके परिवार का जीना भी मुश्किल हो जाता !

भगवान् शंकर भी ईश्वरेच्छा के अधीन

स्वयं महेशः श्वसुरो नगेशः सखा धनेशस्तनयो गणेशः।
तथापि भिक्षाटनमेव शम्भोः बलीयसी केवलमीश्वरेच्छा ॥

शंकरजी के भिक्षाटन को देखकर किसी कवि ने कहा—

शंकरजी स्वयं महेश हैं अर्थात् महान् देवता। उनके श्वसुर भी साधारण व्यक्ति नहीं, वे भी नगराज हिमालय हैं। जो उनके मित्र हैं वे धनपति कुबेर ही ठहरे। और उनके पुत्र को क्या कहना जो दूसरों के लिए विघ्नहर्त्ता एवं सिद्धिदाता के रूप में सारे संसार में प्रसिद्ध हैं। फिर भी आश्चर्य की बात है कि शंकरजी भिक्षा मांगते हैं ! इसे देखकर यही मानना पड़ता है कि ईश्वर की इच्छा ही एकमात्र बलवती होती है। उनके सामने किसी देवी-देवता की भी कुछ नहीं चलती।

शंकरजी की झूठी बड़ाई

न विवाहितः कुमारः नास्ति द्वितीयो बलीवर्दः।
स्वयमपि भिक्षाचारो तदपि कपर्दीति दुर्वादः ॥

संस्कृत में शंकरजी का नाम कपर्दी भी है जिसका अर्थ होता है "कौड़ी वाला" अर्थात् रुपया-पैसा वाला। किसी कवि ने प्रस्तुत पद्य में इसी अर्थ को लेकर शंकरजी पर निम्नलिखित रूप से कटाक्ष किया है—

शंकरजी का एक पुत्र कुमार आज तक कुमार ही रह गया, उसका अभी तक विवाह ही नहीं हो सका। और उनके पास बैल भी है तो वह भी एक ही, उसका अभी तक जोड़ा ही नहीं लगा। और शंकरजी स्वयं जो भिक्षाटन करते हैं उससे उनकी निजी सम्पत्ति का भी पता लग जाता है। फिर भी उन्हें कपर्दी कहकर उनकी व्यर्थ ही बदनामी की जाती है! झूठी बड़ाई की जाती है!

पार्वतीजी की भयंकर घबड़ाहट

निजानपि गजान् भोजं ददानं प्रेक्ष्य पार्वती।
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य मुहुर्मुहुः॥

एक बार महाराज भोज ने बड़ी संख्या में हाथियों का दान किया। उस अवसर पर उन्होंने अपने हाथियों को तो दिया ही, साथ ही साथ, अन्य लोगों के निजी हाथियों को लेकर उन्हें भी देने लगे। इस समाचार को पाकर पार्वतोजी बहुत घबड़ाईं। उन्होंने सोचा कि कहीं, गणेश का हाथी जैसा मुँह देखकर राजा भोज इनको भी किसी को न दे डालें। इस चिन्ता से वे गणेशजी को बार-बार इधर-उधर छिपाने लगीं। कहीं ऐसा न हो कि राजा के किसी सिपाही की दृष्टि गणेशजी पर पड़ जाय और वह जाकर दरबार में सूचना दे दे।

इसी भाव को लेकर ब्रजभाषा के प्रसिद्ध प्राचीन कवि पद्माकर ने एक बहुत ही सुन्दर कवित्त की रचना की है जो निम्नलिखित है—

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावे कहूं
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर सुहेम हय हाथिन के
हलके हजारन को वितर विचारै ना॥

गज गज बकस महीप रघुनाथ राउ
याही गज धोखे कहूं तोहि देहि डारै ना ।।
यातै गौरि गिरिजा गजानन को गोप रही
गिरिते गरे ते निज गोद ते उतारै ना ।।

सरस्वती को भी डूबने का भय

ज्ञानाम्बुधेः परं पारं गता किं न सरस्वति ।
अद्यापि मज्जनभयात् तुम्बीं वहसि वक्षसि ।।

एक किसी विद्वान् ने सरस्वतीजी के हाथ में तुमड़ी देखकर बड़े आश्चर्य से पूछा—

सरस्वतीजी, क्या आप भी अभी ज्ञान-समुद्र के उस पार नहीं पहुँच पायी हैं कि डूबने के भय से अपने साथ हमेशा तुमड़ी लिए रहती हैं ?

संसार का सबसे बड़ा दरिद्र कुटुम्ब

हलमगु बलस्यैकोऽनड्वान् हरस्य न लाङ्गलम्
क्रमपरिमिता भूमिर्विष्णोर्न गौनं च लाङ्गलम् ।
प्रवहति कृषिर्नाद्याप्येषां द्वितीयगवं विना
जगति सकले नेदृग् दृष्टं दरिद्रकुटुम्बकम् ।।

बलदेवजी के पास हल है लेकिन बैल नहीं। शिवजी के पास बैल है तो हल नहीं। भगवान् विष्णु के पास तीन पग जमीन है पर न हल है और न बैल। इन सबों ने आपस में मिलकर जमीन, हल और बैल

इकट्ठा किया तो एक और बैल नहीं कि वह शिवजी के बैल के साथ जोता जाय। इसी कारण आज तक इन लोगों की खेती-गृहस्थी चालू नहीं हुई। संसार में ऐसा दरिद्र कुटुम्ब "न भूतो न भविष्यति"।

भक्तद्वारा भगवान् को भी डाँट-फटकार

अज्ञोऽसि किं किमबलोऽसि किमाकुलोऽसि
व्यग्रोऽसि किं किमघृणोऽसि किमक्षमोऽसि।
निद्रालसः किमसि किं मदघूर्णितोऽसि
क्रन्दन्तमन्तकभयार्त्तमुपेक्षसे यत्?॥

बार-बार स्तुति-प्रार्थना करने पर भी जब भगवान् शंकर ने भक्त की ओर ध्यान नहीं दिया तो भक्त ने भी भगवान् को बिगड़ कर खूब खरी-खोटी सुनायी। डाँट-फटकार कर अपनी प्रार्थना पर ध्यान न देने का कारण पूछते हुए वह कहता है—

अरे महाराज। क्या अब आपकी समझ-बूझ ही समाप्त हो गयी है, या दुर्बल हो गये हैं, या तो व्याकुलता है, अथवा किसी दूसरे काम में व्यग्र हैं, या अब दया करना ही छोड़ दिये हैं, या अब कुछ शक्ति ही नहीं हैं, या नींद आ रही हैं, या कुछ पीये हुए हैं? क्या बात है कि मैं यमराज के भय से इतना चिल्ला-चिल्ला कर पुकार रहा हूँ और आपके कान पर जूं तक नहीं रेंगते? क्या आपका यही कर्त्तव्य है?

विधाता की बुद्धिहीनता

का नाम बुद्धिहीनस्य विधेरस्य विदग्धता।
कूष्माण्डेषु न यश्चक्रे तैलमूर्णाञ्च दन्तिषु॥

इस बुद्धिहीन विधाता की चतुराई का क्या बखान किया जाय जिसने न तो कुम्हड़े में तेल पैदा किया और न तो हाथियों के शरीर में ऊन। कहने का मतलब यह कि यदि विधाता ने कुम्हड़े में तेल और हाथियों में ऊन पैदा किया होता तो जनता की कितनी भलाई होती! तब इनके लिए कन्ट्रोल की व्यवस्था करने की कोई आवश्यकता ही नहीं पड़ती!

शंकरजी का कल्पित खानदान

तातं तत्ताततातं कथय हरकुलेऽलङ्कृते सम्प्रदाने

तच्छ्रुत्वा चन्द्रमौलिर्नतमुखकमलो जातलज्जो वभूव।

ब्रह्माऽवादीत्तदानीं शृणुत हरकुलं वेदकण्ठोग्रकण्ठौ,

श्रीकण्ठान्नीलकण्ठः प्रहसितवदनः पातु वश्चन्द्रचूडः॥

जब शंकरजी का विवाह हो रहा था तो कन्यादान का समय आने पर संकल्प पढ़ने के लिए लोग शंकरजी से पिता, पितामह एवं प्रपितामह का नाम पूछने लगे। परन्तु इस प्रश्न का कोई यथार्थ उत्तर तो शंकरजी दे नहीं सकते थे अतः विचारे शर्म के मारे मुँह लटकाये चुप रहे। वर की इस वेइज्जती को देखकर वहाँ उपस्थित ब्रह्माजी से नहीं रहा गया। उन्होंने झट पूछने वालों से कहा—सुनिये, शंकरजी का खानदान मैं बतलाता हूँ। इनके प्रपितामह का नाम था वेदकण्ठ, पितामह का नाम था उग्रकण्ठ और पिता का नाम था श्रीकण्ठ और इनका नाम है नीलकण्ठ। ब्रह्माजी ने ऐसे कल्पित नाम सुनाये कि इन्हें सुनकर शंकरजी भी अपने को रोक नहीं सके और हँसने लगे।

सीताजी में एक भयंकर कमी

गौरी तनुर्नयनमायतमुन्नता च
नासा कटो पृथुतटी च पटी विचित्रा ।
अङ्गानि लोमरहितानि हिताय भर्त्तुः
पुच्छं न तुच्छमिति कुत्र समस्तवस्तु ।।

लंका से लौटने पर सीता जी को देखने के लिए किष्किन्धा की वानरयुवतियाँ बहुत दिनों से लालायित थीं। अन्त में जब लङ्का-विजय के बाद सीता जी किष्किन्धा में उतरीं तो सभी बानरियों ने उन्हें अच्छी तरह देखा और उनके रूपसौन्दर्य को खूब सराहा परन्तु एक कमी के लिए गहरा दुःख भी प्रकट किया जो इस श्लोक में वर्णित है। बानरियाँ कहती हैं—

गौरवर्ण का शरीर है, बड़ी-बड़ी आँखें हैं, नाक भी चपटी नहीं, ऊँची है, कमर भी लम्बी-चौड़ी है और वस्त्र भी रङ्ग-विरङ्ग के हैं। सबसे अच्छी बात यह है कि सभी अंग लोमरहित हैं जो पति के लिए बहुत सुखकर हो सकते हैं। परन्तु सबसे बड़ी कमी यह है कि सीता जी को एक छोटी भी पूँछ नहीं है। यदि यह भी होती तो क्या पूछना था ! पर क्या किया जाय ? संसार में किसी को भी सारी अच्छी वस्तुयें नहीं मिलतीं। कोई न कोई कमी सब में रह ही जाती है।

देवताओं में भी शास्त्रार्थ ठना

षष्ठीतत्पुरुषं रामो बहुव्रीहिं महेश्वरः ।
रामेश्वरपदे ब्रह्मा कर्मधारयमब्रवीत् ।।

भगवान् राम की लंकायात्रा के समय समुद्र तट पर जब रामेश्वर मन्दिर की स्थापना हो रही थी तो उस समय "रामेश्वर" पद में कौन समास है, इस विषय पर शास्त्रार्थ छिड़ गया। इस शास्त्रार्थ में भाग लेते हुए स्वयं श्री राम जी ने षष्ठीतत्पुरुष समास का समर्थन किया तो इसके विपरीत शंकर जी ने इसे षष्ठीबहुव्रीहि समास बतलाया। फिर दोनों का विरोध करते हुए ब्रह्मा जी ने कहा कि यहाँ न षष्ठी तत्पुरुष है और न षष्ठीबहुव्रीहि। मेरे मत से केवल यहाँ कर्मधारय समास है।

भगवान् शङ्कर का अद्भुत पत्नी-प्रेम

आत्मीयं चरणं दधाति पुरतो निम्नोन्नतायां भुवि
स्वीयेनैव करेण कर्षति तरोः पुष्पं श्रमाशङ्कया।
तल्पे किं च मृगत्वचा विरचिते निद्राति भागैर्निजै
रन्तः प्रेमभरालसां प्रियतमामङ्के दधानो हरः॥

जब भगवान् शंकर अर्धनारीश्वर रूप में होते हैं तो शरीर का दक्षिण भाग उनका होता है और वाम भाग पार्वती का। इस रूप को धारण कर भगवान् शंकर कहीं जाते हैं और सामने नीची-ऊँची जमीन पड़ती है तो वे पार्वतीजी के पैर को कष्ट होने के भय से पहले अपना ही पैर रखते हैं, पार्वतीजी का नहीं रखने देते। फिर जब पूजा के लिए फूल तोड़ना होता है तो वह भी शंकरजी अपने ही हाथों से करते हैं ताकि फूल तोड़ने के लिए वृक्ष की शाखाओं को खींचने में कहीं पार्वतीजी के हाथों को श्रम न करना पड़े। और रात में जब शुष्क मृगचर्म की शय्या पर सोना होता है तो शंकरजी अपने ही भाग को नीचे रखते हैं, इसलिए कि पार्वती जी के कोमल भाग को मृगचर्म की रूक्षता से कहीं कष्ट न हो जाय। इस प्रकार भगवान् शंकर अपनी अगाध अन्तःप्रेम से अलस हुई प्रियतमा पार्वती को मारे प्रेम के कोई कष्ट नहीं होने देते। फूल जैसा बचाकर रखते हैं।

३-विधि की विडम्बना

—:*:—

अभागे के लिए सब जगह आफत !

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः सन्तापितो मस्तके
वाञ्छन् देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः ।।

एक कोई खल्वाट आदमी कहीं गर्मी के दिनों में जा रहा था। चलते समय जब सूर्य की प्रखर किरणों से उसका मस्तक अत्यन्त तप गया तो वह छायादार जगह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते किसी ताड़ के वृक्ष के नीचे जाकर बैठ गया। उसने सोचा कि यहाँ छाया में थोड़ी देर तक आराम करके फिर चलेंगे। पर संयोग जो उसका खराब था। जैसे ही वह बैठा कि ठीक उसके शिर पर ही ताड़ का एक बड़ा सा फल गिरा और आवाज के साथ उसका मस्तक खण्ड-खण्ड हो गया। यह ठीक ही कहा गया है कि अभागा आदमी जहाँ जाता है, वहाँ उसके पीछे-पीछे आफत भी लगी रहती है। कहाँ तो गये आराम करने और कहाँ शिर फोड़ कर लौटे !

बेचारे सुग्गे को लेने के देने पड़ गये

उच्चैरेष तरुः फलं च पृथुलं दृष्ट्वैव हृष्टः शुकः
पक्वं शालिवनं विहाय जडधीस्तां नारिकेलीं गतः।

तामारुह्य बुभुक्षितेन मनसा बुद्धिः कृता भेदने
आशा तस्य न केवलं विगलिता चञ्चुर्गता चूर्णताम् ॥

एक मूर्ख सुग्गा अपनी भूख मिटाने के लिए कहीं पके धान के खेत में जारहा था। इसी बीच उसकी दृष्टि एक नारियल के पेड़ पर पड़ी। उस ऊँचे पेड़ को और उसके लटकते हुए लम्बे-लम्बे फलों को देखकर सुग्गा बहुत प्रसन्न हुआ और उस फल को खाने की इच्छा से धान के खेत को छोड़कर उसी पेड़ पर जा बैठा। परन्तु जब उसने फल को फोड़ने का विचार किया और चोंच मारा तो न केवल उसकी आशा ही समाप्त हुई प्रत्युत उसकी चोंच भी खण्ड-खण्ड हो गयी।

नाजायज लोभ करने का यही परिणाम होता है!

सबके सब धिक्कार के पात्र

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरक्ता
साऽप्यन्यमिच्छति जनं स जनोऽन्यसक्तः।
अस्मत्कृते तु परितुष्यति काचिदन्या
धिक्तां च तं च मदनं च इमाञ्च माञ्च ॥

जिस स्त्री को मैं हमेशा चाहता हूँ वह मुझसे विरक्त है और दूसरे पुरुष को चाहती है। और जिसको वह चाहती है वह दूसरी स्त्री के साथ आसक्त है! और मेरे लिए कोई और ही स्त्री बेचैन है जिसे मैं नहीं चाहता। तात्पर्य यह कि किसी में भी किसी का सच्चा प्रेम नहीं है, सब दिखावटी और बनावटी है। अतः उस स्त्री को भी धिक्कार है जो मेरे चाहने पर भी मुझे न चाहकर दूसरे को चाहती है, उस पुरुष को भी धिक्कार है जो उस स्त्री के चाहने पर भी उसे छोड़कर दूसरी स्त्री पर आसक्त है। उस स्त्री को भी धिक्कार है जो मेरे न चाहने पर

भी जबरदस्ती मेरी आशा लगाये हुए है। और मुझे भी धिक्कार है जो अपनी स्त्री को छोड़कर दूसरी स्त्री से प्रेम करना चाहता हूँ। और सबसे अधिक उस मदन को धिक्कार है जिसके कारण हम सब लोगों की यह हालत हुई है।

अयोग्य स्थान में रहने का फल

केनात्र चम्पकतरो! बत रोपितोऽसि
कुग्राम - पामरजनान्तिक - वाटिकायाम्।
यत्र प्रवृद्ध - वनशाक - विवृद्धिलोभात्
भो भग्न - वाट - घटनोचित्त - पल्लवोऽसि॥

अरे! अभागे चम्पक! इस नीच गाँव और इन मूर्ख लोगों के बगीचे में भला किसने तुम्हें लगा दिया है? यहाँ के लोग तो अपने बढ़े हुए जंगली शाकों की रक्षा और वृद्धि के लिए तुम्हारे पल्लवों को तोड़-तोड़ कर अपने बगीचे का रुँधान ही बना डालेंगे। यहाँ तुम्हारी इज्जत करने वाला कौन है?

बेमेल विवाह का यह परिणाम

एतस्य वेश्मनि कलावति! हालिकस्य
दुर्दैव - वैभव - वशात् पतितासि तन्वि।
तद्वारिकुम्भ - वहनाय करीष - कृत्यै
चातुर्यमर्जय वशीकरणाय भर्त्तुः॥

किसी निपट गवाँर के साथ व्याही हुई किसी कलाविद् युवती के प्रति किसी सहृदय प्रतिवेशी ने कहा—

यह तुम्हारा वड़ा भारी दौर्भाग्य है कि तुम जैसी विविध-कला-प्रवीण रमणी को ऐसे निपट गवाँर किसान के पाले पड़ना पड़ा। पर अब किया ही क्या जा सकता है ? तुम अब घड़े में पानी भर-भर कर लाने और गोबर की कंडी बनाने की कला सीखो जिससे तुम्हारा यह पति तुम पर प्रसन्न रहे। इसके लिए तुम्हारी और सब कलायें तो निरर्थक ही है। बानर क्या जाने आदी का सवाद ?

व्यर्थ का प्रयास

सुवर्णकार ! श्रवणोचितानि वस्तूनि विक्रेतुमिहागतोऽसि।
अद्यापि नाश्रावि यदत्र पल्ल्यां पल्लीपतिर्नूनमविद्धकर्णः॥

कोई सुवर्णकार किसी गाँव में कान के विविध आभूषणों को लेकर वेचने के लिए पहुँचा। पर दुर्भाग्यवश वह गाँव ऐसा निकला जिसमें किसी व्यक्ति का अभी तक कान ही नहीं छिदा था। इसी बात को इस गाँव का निवासी व्यक्ति सुवर्णकार से कह रहा है—

अरे भाई सुवर्णकार ! तुम बेकार ही इस गाँव में कान के आभूषणों को बेचने के लिए आये हो। क्या तुम को यह मालूम नहीं कि इस गाँव के मालिक तक का कान अभी तक छिदा हुआ नहीं है ? फिर साधारण लोगों की तो बात ही क्या है !

पुरुषों को एक से एक भयंकर दुःख !

रन्धनं बन्धनं पुंसां मरणं परिवेषणम्।
ततो दुःखकरं मन्ये भोजनस्थानलेपनम्॥

पुरुषों के लिए रसोई बनाने का काम एक बड़ा भारी बन्धन है, और परोसने का काम तो मरण ही है। पर यदि चौका-चूल्हा भी लीपना-पोतना पड़े तो वह तो मरने से भी भयंकर दुःखद है ?

———

४—राज-दरबार की बातें

—:०:—

राजा और भिखारी दोनों ही लोकनाथ

अहं च त्वं च राजेन्द्र लोकनाथावुभावपि ।
बहुव्रीहिरहं षष्ठी षष्ठीतत्पुरुषो भवान् ।।

एक किसी ढीठ भिखारी ने एक राजा से कहा--राजेन्द्र! आप और हम दोनों ही लोकनाथ हैं। हम दोनों में कोई भेद नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि मैं षष्ठीबहुव्रीहि हूं और आप षष्ठीतत्पुरुष हैं।

षष्ठीबहुव्रीहि में लोकनाथ शब्द का अर्थ है—"लोग ही हैं नाथ जिसके" अर्थात् भिखारी। षष्ठीतत्पुरुष में अर्थ है 'लोगों का नाथ' अर्थात् राजा।

देवताओं का भी सामान गायब

महाराज श्रीमन् जगति यशसा ते धवलिते
पय:पारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते ।
कपर्दी कैलासं सुरपरिवृढ: स्वं करिवरं
कलानाथं राहु: कमलभवनो हंसमधुना ।।

एक कवि ने किसी राजा की प्रशंसा करते हुए कहा--

महाराज! आपके यश से सारा संसार इस प्रकार सफेद हो गया है कि जिन लोगों के पास जो भी सफेद वस्तुएँ थीं वे सब उसी में

विलीन हो गयी हैं, उनका किसी को कहीं पता नहीं लगता। इसके कारण न केवल मनुष्य ही अपितु देवता भी परेशान हैं। इसीलिए परम पुरुष विष्णु अपने निवास स्थान समुद्रको ढूँढ़ रहे हैं, शिवजी कैलास को ढूँढ़ रहे हैं, इन्द्र ऐरावत हाथी को ढूँढ़ रहे हैं, राहु चन्द्रमा को ढूँढ़ रहे हैं और ब्रह्माजी अपने वाहन हंस को ढूँढ़ रहे हैं। चारों ओर तहलका मचा हुआ है?

बिना घी की खिचड़ी और वेश्या की समानता

हस्तं न मुञ्चति न मुञ्चति चाधरोष्ठं
गाढं गले लगति पीडति मध्यदेशम्।
स्नेहं विना सकलविभ्रमभावकर्त्री,
वाराङ्गनेव नृपते! कृशराऽद्य भुक्ता॥

किसी राजा ने किसी कवि से पूछा कि आज आपने क्या भोजन किया है तो कवि ने उत्तर दिया—

राजन्! आज तो मैंने खिचड़ी खायी है पर उसमें स्नेह (घी) नहीं था। अत एव वह भी स्नेहरहित वेश्या के समान ही हाथ नहीं छोड़ती थी, अधरोष्ठ भी नहीं छोड़ती थी, गले को भी खूब जोरों से पकड़ लेती थी और कमर को भी खूब दबाती रही। अर्थात् जिस प्रकार स्नेह न रहने पर भी वेश्या ऊपर से ही प्रेम के सारे भाव दिखाती है उसी प्रकार हमारी खिचड़ी भी थी।

याचकों को एक महान् संशय

नाक्षराणि पठता किमपाठि पाठितोऽपि किमु विस्मृत एव।
इत्थमर्थिजनसंशयदोला - खेलनां खलु चकार नकारः॥

एक कोई राजा थे जो कभी याचकों को "न" नहीं कहते थे। इसे देखकर याचकों को इस बात का बड़ा संशय था कि इस राजा के मुँह से कभी 'न' अक्षर क्यों नहीं निकलता। वे यही बराबर सोचते रहे कि क्या अक्षरों को पढ़ते समय इस राजा ने 'न' अक्षर पढ़ा ही नहीं था अथवा पढ़कर भी बाद में उसे बिल्कुल भूल ही गये ? नहीं तो इसका दूसरा और क्या कारण हो सकता है ?

चोर राजा से भी बढ़कर चालाक !

भिक्षुर्नष्टो भारविश्चापि नष्टो भट्टिर्नष्टो भीमसेनोऽपि नष्टः।
भुक्कुण्डोहं भूपतिस्त्वं चराजन् भम्भापंक्तौ ग्रन्तकः सन्निविष्टः ॥

एक बार किसी भुक्कुण्ड नामक चोर को पकड़ कर सिपाही लोग राजा भोज के दरबार में लें गये और उस पर चोरी एवं हत्या करने का आरोप लगाया। जब राजा भोज ने इस सम्बन्ध में उससे पूछ-ताछ की तो भुक्कुण्ड ने कहा कि महाराज ! मेरा कुछ भी अपराध नहीं है। आजकल 'भ' अक्षर वाले लोगों की ग्रहदशा ही इतनी खराब है कि वे कष्ट में पड़ते जा रहे हैं। देखिये तो सही—

भिक्षु नष्ट हो गये, भारवि नष्ट हो गये, भट्टि नष्ट हो गये और भीमसेन भी नष्ट हो गये। अब संयोग से हम भुक्कुण्ड और आप भोज, ये दो 'भ' अक्षर वाले बचे हुए हैं, और अब हम लोगों पर भी ग्रहदशा आने ही वाली है। मालूम पड़ता है कि यमराज 'भ' अक्षर वालों के पीछे पड़ गये हैं। इसीलिए आज हमारी यह दशा हुई हैं ? और हो सकता है कि आप के ऊपर भी कभी कोई ऐसा संकट आ जाय !

—:*:—

५--गरीबों की दुनियाँ



गरीबों के घर सदा एकादशी

राजन् ! त्वत्कीर्त्तिचन्द्रेण तिथय: पूर्णिमा कृता: ।
मद्गेहान्न बहिर्याति तिथिरेकादशी भयात् ।।

एक गरीब अपनी गरीबी का वर्णन करते हुए राजा से कहता है—

राजन् ! आपके कीर्तिरूपी चद्रमा के प्रबल प्रकाश ने सारी तिथियों को पूर्णिमा बना दिया है। इसी डर से एकाएशी तिथि कभी हमारे घर से बाहर नहीं निकलती कि कहीं वह भी पूर्णिमा न बन जाय। तात्पर्य यह कि उस गरीब के घर प्रतिदिन उपवास ही करना पड़ता था।

गरीब के वस्त्र की हालत

अयं पट: सूत्रदरिद्रतां गत: अयं पटश्छिद्रशतैरलङ्कृत: ।
अयं पट: प्रावरितुं न शक्यते अयं पट: संवृत एव शोभते ।।

किसी गरीब ने अपने सभी वस्त्रों को निकाल कर देखा तो उनमें से कोई वस्त्र उसके धारण करने योग्य नहीं निकला। वह एक-एक वस्त्र को देखता है और कहता है—

यह कपड़ा तो अब बिल्कुल सूतों से खाली हो गया है और इसमें तो सैकड़ों छिद्र हो गये हैं। यह कपड़ा कुछ ठीक है पर खोलकर ओढने लायक यह भी नहीं है, और यह जो चौथा है उसे चौपेत कर

रखने में ही कुशल है। नहीं तो खोलकर ओढ़ने से यह भी खतम हो जायगा।

गरीबों का जाड़ा कैसे बीतता है ?

रात्रौ जानुः दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः।
एवं शीतं मया नीतं जानु - भानु - कृशानुभिः ।।

एक व्यक्ति ने किसी गरीब से पूछा कि तुम्हारे जाड़े के दिन कैसे बीते तो उसने उत्तर दिया—

रात में जानु, दिन में भानु और दोनों सन्ध्या के समय कृशानु इस प्रकार जानु, भानु और कृशानु की सहायता से हमने जाड़े के दिन बिताये। (जानु-ठेहुन, भानु-सूर्य, कृशानु-आग)।

गरीब का कपड़ा और विष्णु बराबर

आदिमध्यान्तरहितं दशाहीनं पुरातनम्।
अद्वितीयमहं वन्दे मद्वस्त्रसदृशं हरिम् ।।

किसी गरीब ने भगवान् की वन्दना करते हुए कहा—मैं उस हरि की वन्दना करता हूँ जिनका मेरे कपड़े के समान ही आदि, मध्य तथा अन्त नहीं है, जो दशाओं से रहित हैं, पुराने हैं तथा अद्वितीय हैं अर्थात् जिनका कोई जोड़ा नहीं है।

कितनी सटीक तुलना है! किसी गरीब के फटे-पुराने वस्त्र और विष्णु के सादृश्य की यह कल्पना जितनी यथार्थ है उतनी ही मर्मस्पर्शी भी!

गरीब किस प्रकार वस्त्र धारण करते हैं!

अयं पटो मे पितुरङ्गभूषणं पितामहाद्यै रुपभुक्तयौवनः।
अलङ्करिष्यत्यथ पुत्रपौत्रकान् मयाऽधुना पुष्पवदेव धार्यते ।।

किसी गरीब आदमी के पास एक ही वस्त्र था जो बहुत पुराना था और जीर्ण-शीर्ण हो गया था। उसे धारण करते समय वह उसको बहुत बचाता था और कहता है—

इस वस्त्र को हमारे पिताजी भी धारण करते हैं और जब यह नया था तो हमारे दादे-परदादे भी इसे पहनते थे। अब आगे जब तक कोई नया वस्त्र नहीं मिलता है तब तक हमारे सब लड़के और पोते भी पहन सकें इसलिए हम इसे फूल के समान ही बचा कर धारण किया करते हैं। इस डर से कि कहीं झटके में फट न जाय!

गरीब के घर की पतोहू होना भी पाप का फल

न केशेषु स्नेहो न च कुचतटीचन्दनरसो
न वा वीटी वक्त्रे न च नयनयोरञ्जनकथा।
न चाल्पोऽप्याकल्पो न च सुवसनं नैव कुसुमं,
स्नुषात्वं पापानां फलमधनगेहेषु सुदृशाम्॥

न केशों में तेल, न कुचतटों पर चन्दन का रस, न मुँह में पान और न आंखों में आँजन। सजावट का थोड़ा भी सामान नहीं। यहाँ तक कि पहनने के लिए एक सुन्दर साड़ी भी नहीं और न केशों में सजाने के लिए फूल ही। ऐसा लगता है कि युवतियों का गरीब लोगों के घर की पतोहू होना भी किन्हीं भयङ्कर पापों का परिणाम ही है।

लौकी और कोहड़े का भारी भरोसा

पोतानेतानपि गृहवति ग्रीष्ममासावसानं
यावन्निर्वाहयतु भवती येन वा केनचिद्वा।

पश्चादम्भोधरजलपरीपातमासाद्य तुम्बी
कुष्माण्डी च प्रभवति यदा भूभुजः के वयं के ॥

एक गरीब व्यक्ति ने अपनी पत्नी से कहा—

प्रिये ! जब तक गर्मी का मौसम बीत नहीं जाता तब तक जिस किसी भी उपाय से तुम इन बच्चों का पालन-पोषण कर इन्हें जिला रखो। गर्मी के बाद बरसात आने पर जब बादलों का पानी पीकर हमारी लौकी और कुम्हड़ा खूब फर जायेंगे तो फिर कोई चिन्ता की बात नहीं रह जायगी। तब तो कौन राजा और कौन गरीब ! सब बराबर हो जायगें।

टका का महत्त्व

टका धर्मः टका कर्मं टका हि परमं तपः।
यस्य हस्ते टका नास्ति हाटके टकटकायते ॥

टका ही धर्म है, टका ही कर्म है और टका ही परम तप है ! जिसके हाथ में टका नहीं होता वह बाजार में जाने पर केवल टकटकी लगाकर सब सामानों को देखा करता है पर कुछ खरीद नही सकता।

बरसात में गरीब के घर की हालत

पीठाः कच्छपवत्तरन्ति सलिले सम्मार्जनी मीनवत्
दर्वी सर्पविचेष्टितानि कुरुते सन्त्रासयन्ती शिशून्।
शूर्पाधावृतमस्तका च गृहिणी भित्तिः प्रपातोन्मुखी
रात्रौ पूर्णतडागसन्निभमभूत राजन् मदीयं गृहम् ॥

एक निर्धन व्यक्ति अपने घर की बरसात के समय की दुर्दशा का वर्णन एक राजा से करता है और कहता है--

राजन् ! रात में जो भयङ्कर वर्षा हुई उसमें मेरा घर तो पानी से लबालब भरे तालाब के समान हो गया। पानी इतना जमा हुआ था कि उसमें हमारे घर के पीढ़े कछुये की तरह तैरने लगे, झाड़ू मछली की तरह दीखने लगी और करछुल बच्चों को डरवाती हुई साँपों की भाँति चेष्टायें करने लगी। गृहिणी की यह हालत थी कि वह मस्तक को सूप से ढके हुई थी और भीत तो ऐसी मालूम पड़ती थी कि मानों अब गिरी कि तब !

गरीबी की चरमसीमा

स्थानं नास्ति कुटी व्ययाय न वटी नास्ते जने कर्पटी
तैलाभाव - जटी सुता रटरटी सर्वत्र मानत्रुटिः।
शय्या भूमितटी कटो लघुपटी पात्रं च मे मृद्घटी
किं राजन् ! प्रकटीकरोमि निकटे भिक्षा न लभ्या मुटिः॥

एक अत्यन्त गरीब व्यक्ति ने किसी राजा के पास जाकर अपनी गरीबी का वर्णन करते हुए कहा—

हे राजन् ! मैं क्या आपके सामने अपनी गरीबी का वर्णन करूँ ? हालत इतनी बिगड़ी हुई है कि न तो हमारे पास रहने के लिए कोई कुटी है, न खर्च करने के लिये एक भी कौड़ी है और न घर के लोगों के वदन पर कपड़ा है। तेल न होने के कारण शिर के बाल जटा हो गये हैं। बाल-बच्चे खाने-पीने के लिए रटते रहते हैं, सर्वत्र अपमान होता है। अब हमारे पास यदि कोई सम्पत्ति है तो वह सोने के लिए जमीन, कमर ढकने के लिए एक छोटा कपड़ा और वर्त्तन एक मिट्टी का घड़ा मात्र ! और यदि भिक्षा मांगने के लिए कहीं आस-पास निकलूँ तो मुट्ठी भर भीख भी नहीं मिलती।

दौर्भाग्य के चित्रण के साथ अनुप्रासों की भी जुटान कितनी मनोहर है ?

दरिद्र भी करोड़पति

बाट्यां वाट्यालकोटिः पिटरकजठरे मक्षिकाणां च कोटिः
कोटिर्गण्डूपदोनां मम गृहनिकटे यूकक्कोटिः कवर्याम् ।
गात्रे विस्फोटकोटिः कटितटविलुठत्-कर्पटो-ग्रन्थिकोटि-
रित्थं कोटोश्वरोऽहं नृपतिवर कथं गन्तुमन्यत्र कामः ॥

किसी राजा ने किसी व्यक्ति को अत्यन्त दरिद्र देखकर उसे कमाने-धमाने के लिए कहीं अन्यत्र जाने को कहा तो उसने उत्तर दिया—

मेरी झोपड़ी में करोड़ों छेद हैं, मेरी कठौती में करोड़ों मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं, मेरे घर के आस-पास करोड़ों केचुलें चलती रहती है तथा मेरे केश में करोड़ों जुएँ पड़े हुए हैं। मेरे शरीर की यह हालत है कि उसमें करोड़ों फोड़े-फुन्सियाँ हैं और मैं कमर में जो कपड़ा लपेटे रहता हूँ उसमें भी करोड़ों-से कम गाँठें नहीं लगी हुई हैं !

इस प्रकार, महाराज ! मैं तो स्वयं ही करोड़पति हूँ। फिर दूसरी जगह जाकर हाथ फैलाने की जरूरत क्या ?

—:o:—

६—पशु-पक्षि-जगत्

—:०:—

मेढक की पञ्चायत ?

चन्दन - कर्दम - कलहे भेको माध्यस्थ्यमापन्नः ।
ब्रूते पङ्कनिमग्नः कर्दमसाम्यं न चन्दनं वहति ॥

एक बार अपने बड़प्पन का दावा करने वाले चन्दन और कर्दम (कीचड़) में झगड़ा हो गया तो पञ्चायत कराने के लिए वे मेढक के पास पहुँचे और निर्णय देने के लिए निवेदन किया। इस पर मेढक ने सदा कीचड़ में निमग्न रहने के कारण इसका पक्ष करते हुए फैसला दिया कि चन्दन चाहे जितना भी अच्छा हो पर वह कर्दम की तुलना कभी नहीं कर सकसा। अतः चन्दन से श्रेष्ठ कर्दम ही है। कितना न्यायपूर्ण फैसला है !

बन्दर की यह दुर्दशा

मर्कटस्य सुरापानं ततो वृश्चिकदंशनम् ।
तन्मध्ये भूतसञ्चारो यद्वा तद्वा भविष्यति ॥

एक तो बन्दर स्वभाव से ही अत्यन्त चंचल होता है। इस पर भी उसने संयोग वश शराब पी ली! फिर उसे एक बिच्छू ने भी काट लिया। यदि बात यही समाप्त हो जाती तो भी गनीमत थी। पर इसी बीच उसे भूत भी लग गया। अब बेचारे बन्दर की क्या दशा हुई होगी, इसे भगवान् ही जानें!

बन्दर क्या जाने आदी का सवाद ?

हारं वक्षसि केनापि दत्तमज्ञेन मर्कटे ।
लेढि जिघ्रति संक्षिप्य करोत्युन्नतमासनम् ।।

किसी गंवार आदमी ने किसी बन्दर के गले हार पहना दिया। पर बन्दर को हार से क्या मतलब ? इसलिए कभी वह उसको खाद्य वस्तु समझ कर चाटता, कभी उसे सूँघता और कभी उसे गुमेट कर अपना आसन ऊँचा करता और फिर शान से उस पर बैठता। भला बन्दर हार से इसके अलावे और क्या कर सकता है !

ग्रामीण लोगों द्वारा हाथी का उपहास

ऊर्णां नैष दधाति नैव विषयो वाहस्य दोहस्य वा
तृप्तिर्नास्य महोदरस्य बहुभिर्घासैः पलालैरपि ।
हा कष्टं कथमस्य पृष्ठशिखरे गोणी समारोप्यते,
को गृह्णातु कपर्दकैरलमिति ग्राम्यैर्गजो हस्यते ।।

कुछ गवाँर लोगों ने अकस्मात् कहीं किसी हाथी को देखा और उसे सर्वथा निरर्थक समझ कर उसका उपहास करने लगे। उनके तर्क देखिये कितने सटीक हैं जो निम्नलिखित हैं—

न तो उसके विशाल शरीर पर कहीं थोड़ा सा भी ऊन है। न तो इस से सवारी का ही काम लिया जा सकता है और न दूध दूहने का ही। फिर पेट इसका इतना बड़ा है कि बहुत से पुआल और घास के खतम हो जाने पर भी इसकी तृप्ति नहीं हो सकती और इसकी पीठ इतनी ऊँची है कि उस पर बोरा भी बहुत कठिनाई से ही लादा जा सकता है। ऐसी स्थिति में ऐसे बेकार जानवर को कौड़ी के मोल पर भी कौन ले सकता है ?

गदहे द्वारा घोड़े का उपहास

वक्त्रे वल्गाप्रकर्षः समरभुवि तव प्राणरक्षा च दैवात्
स्वेच्छाचारो न चास्ते नहि भवति तथा भारवाहो नितान्तम् ।
इत्युक्तोऽश्वः खरेण प्रहसितवदनो मूक एवाऽवतस्थे
तस्माज्जात्या महान्तोऽधमजनविषये मौनमेवाश्रयन्ति ।।

एक गदहा एक घोड़े का उपहास करते हुए उससे कहता है—

भाई घोड़ा, तुम्हारा जीवन तो बड़ा ही निकृष्ट हैं। क्योंकि एक तो मुँह में बराबर लगाम कसी रहती है, दूसरे लड़ाई में हमेशा ही प्राणों पर संकट ? तीसरे अपनी इच्छानुसार कहीं आ जा भी नहीं सकते और चौथे बहुत भारी बोझा ढोने का भी तुम में सामर्थ्य नहीं। ऐसी स्थिति में तो तुम्हारी अपेक्षा हमारा ही जीवन श्रेष्ठ है। इस प्रकार जब गदहे ने घोड़े से कहा तो घोड़ा कुछ हँस कर ही रह गया, उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। क्योंकि जो लोग जाति के श्रेष्ठ होते हैं वे नीच लोगों के साथ बातें नहीं करते। मौन ही धारण कर लेते हैं।

हंस के ऊपर चोरी का मुकदमा !

हंस ! प्रयच्छ मे कान्तां गतिस्तस्यास्त्वया हृता ।
सम्भाषितैकदेशेन देयं यदभियुज्यते ।।

कहीं किसी व्यक्ति की स्त्री की चोरी हो गयी। दूसरे दिन उसने देखा कि एक हंस ठीक उसी चाल से चल रहा है, जिस प्रकार उसकी स्त्री चला करती थी। अब क्या पूछना था ? तुरन्त उसते हंस को पकड़ा और कहा कि बस, मुझे मालूम हो गया कि तुम्हीं ने हमारी

स्त्री को चुराया है। अब उसे तुम्हें देकर ही जाना होगा। क्योंकि चोरी का एक सामान जिसके यहाँ मिल जाता है तो बाकी सामान भी उसी के घर से बरामद किया जाता है। तुमने हमारी स्त्री की चाल को चुराया है तो उसे भी तुम्हीं ने चुराया होगा। इसमें कोई सन्देह नहीं।

कुतिया के लिए शुभ कामना

अन्यग्रामप्रस्थिता कर्षयन्ती मण्डलानां पंक्तिम्।
अखण्डित-सौभाग्या वर्षशतं जीवतु मे शुनी॥

किसी सहृदय व्यक्ति ने अपनी कुतिया के प्रति शुभ कामना प्रगट करते हुए कहा—

हमारी कुतिया जब गाँव से दूसरे गाँव में जाने लगती है तो वह अपने पीछे कुत्तों की एक लम्बी कतार को आकृष्ट करती हुई चलती है। इसका यह सौभाग्य अखण्डित रहे और यह सौ वर्ष तक जीये यह मेरी शुभ कामना है।

भैंसे के लिए भैंस भी चन्द्रमुखी

स्वगणे परमा प्रीतिः जङ्गमानां विशेषतः।
महिषाः किं न जानन्ति चन्द्रवन्महिषीमुखम्॥

वैसे तो सब लोगों का अपने-अपने वर्ग में विशेष प्रेम होता ही है पर यह गुण जानवरों में विशेष रूप से पाया जाता है। तभी तो भैंसे भी अपनी पत्नी भैंस को किसी चन्द्रमुखी से कम खूबसूरत नहीं समझते।

बेचारे बच्चे भौरों की दुर्दशा

तीरे तरुण्या वदनं सहासं नीरे सरोजञ्च मिलद्विकासम् ।
आलोक्य धावत्युभयत्र मुग्धा मरन्दलुब्धाऽलिकिशोरमाला ॥

किसी सरोवर के तट पर एक तरफ तो किसी तरुणी का वदन हँसता हुआ है और दूसरी ओर पानी में खिला हुआ कमल है। इन दोनों को देखकर बेचारे भोले-भाले भौरों के बच्चे मकरन्द के लोभ से दोनों ओर दौड़ रहे हैं। उनको यह मालूम ही नहीं होता कि असली कमल कौन है ? यह है या वह है।

भैंस के आगे बेन !

अस्मिन् सखे बधिरलोक-निवासभूमौ
किं कोमलेन तव कोकिल कूजितेन ।
एते हि दैवहतकास्त्वदभिन्नवर्णं
त्वां काकमेव कलयन्ति कलानभिज्ञाः ॥

किसी बहरे लोगों के गाँव में एक कोयल को बोलते हुए देखकर एक सहृदय व्यक्ति ने कहा—

अरे मित्र कोकिल ! इस गाँव में सभी लोग बहरे ही बसते हैं। यहाँ कोई तुम्हारे कोमल कलरव की कीमत लगाने वाला नहीं है। यहाँ के तो अभागे गवाँर लोग कौओं के समान काला रंग होने के कारण तुम्हें भी कौआ ही समझेंगे। कहीं ऐसा न हो कि तुम्हें भी यहाँ से कौओं के समान ही कुछ बिदाई लेकर न जाना पड़े। इसलिए कृपया इस गाँव में अपना कूजन बन्द ही रखो। यहाँ कुछ बोलने की जरूरत नहीं।

गृहस्थ के लिए सिरदर्द बैल !

खुराघातैः शृङ्गैः प्रतिदिनमलं हन्ति पथिकान्
भृशं शस्योत्सादैः सकलनगरख्यातपटिमा ।
युगं नैव स्कन्धे वहति नितरां याति धरणीं
वरं शून्या शाला न च पुनरयं दुष्टवृषभः ॥

किसी गृहस्थ के पास कोई बड़ा भारी बदमास बैल था जिससे वह बिल्कुल तंग हो गया था। उसकी बदमासी का वर्णन करते हुए वह कहता है—

यह इतना दुष्ट बैल है कि जितने भी राही इसके पास से गुजरते हैं सबको लात से और सींघ से मारा करता है। लोगों के खेत की फसल को चरने और नुकसान करने में तो इतना चालाक है कि पूरे गाँव में इसकी प्रसिद्धि है। और हल चलाने के लिए जब इसके कन्धे पर जुआ रखा जाता है तो उसे रखता ही नहीं, बिल्कुल नीचे जमीन पर बैठ जाता है। क्या कहें ? गोशाला सूनी रहे वही अच्छा पर ऐसा बदमास बैल नहीं अच्छा !

ऊँट के विवाह में गदहा गवैया !

उष्ट्रकस्य विवाहे तु गर्दभा गायका जगुः ।
परस्परं प्रशंसन्ति अहो रूपमहो ध्वनिः ॥

किसी ऊँट के विवाह में गदहे गायक बनकर गये और महफिल में गाना गाने लगे। साथ ही दोनों एक दूसरे की प्रशंसा भी करने लगे। गदहे ने वर की ओर संकेत करते हुए कहा—वाह, कितना सुन्दर रूप है ? और वर ने कहा—वाह ! गायकों का कितना मधुर स्वर है, कितना सुरीला राग है !

७–आक्षेप एवं उपहास



कवियों की उल्टी समझ

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधा
ये नित्यमाहुरबला इति कामिनीस्ताः ।
याभिर्विलोलतर - तारक - दृष्टिपातैः
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबला: कथं ताः ॥

वे कविवर निश्चित ही उल्टी समझ के हैं जो हमेशा स्त्रियों को "अबला" कहा करते हैं। क्योंकि जो स्त्रियाँ अपनी चंचल पुतली वाली आँखों की एक दृष्टि-मात्र से इन्द्रादि देवताओं को भी जीत लेती हैं वे "अबला" कैसे कही जा सकती हैं? वे तो परम प्रबला हैं!

कीर्तन करनेवालों को पहचानना महा कठिन

नृत्यन्ति गायन्ति रुदन्ति नित्यं
हसन्ति रामेति पदं वदन्तः ।
उन्मादिनो वा जठरार्थिनो वा
वैहासिका वेति नहि प्रतीमः ॥

ये कीर्त्तन करने वाले लोग कभी तो नाचते हैं, कभी गाते हैं, कभी रोते हैं, कभी हँसते हैं और कभी राम-राम कहते है। ऐसी स्थिति में ये लोग उन्मादी हैं, या पेट के लिए यह नाटक रच रहे हैं या मजाक किये हुए हैं, कुछ पता ही नहीं चलता।

तार्किकों का यह झूठा तर्क

मनसः परमाणुतां वदन्तः कथमद्यापि न तार्किकास्त्रपन्ते।
कनकाचल-जित्वर-स्तनीनां तरुणीनां किल यत्र सन्निवेशः॥

मन को परमाणु रूप बताने वाले तार्किक क्या आज भी ऐसी तर्क-विरुद्ध बात कहने में लज्जित नहीं होते? अरे भाई, जिस मन में कनकाचल पर्वत को जीतने वाले स्तनों वाली युवतियों का प्रवेश और निवास हो सकता है वह मन परमाणु रूप कैसे कहा जा सकता है?

पाणिनि भी पक्के धोखेबाज

नपंसकमिति ज्ञात्वा प्रियायै प्रेषितं मनः।
तत्तु तत्रैव रमते हताः पाणिनिना वयम्॥

पाणिनि के व्याकरण के अनुसार हमने मन को नपुसक समझ कर अपनी प्रियतमा के पास भेजा और सोचा कि इसके जाने में कोई आशंका की बात नहीं है। पर वह तो जाकर उसी के पास रम गया, और अब लौटता ही नहीं। हम तो पाणिनि पर विश्वास कर बुरी तरह मारे गये! हमें क्या पता कि ये महाराज इतने बड़े धोखेवाज निकलेंगे?

जामाता भी एक ग्रह

सदाऽतुष्टः सदा रुष्टः सदा पूजामपेक्षते ।
कन्याराशिस्थितो नित्यं जामाता दशमो ग्रहः ।।

कन्या राशि पर रहने वाला जो जामाता अर्थात् दामाद है वह एक प्रकार से दसवाँ ग्रह है। क्योंकि ग्रहों की भाँति वह भी प्रायः बराबर ही असन्तुष्ट रहता है, रुष्ट रहता है और हमेशा ही कुछ पूजा और दान-दक्षिणा चाहता रहता है।

सामवेदी विद्वान् की पवित्रता

सामगायनपूतं मे नोच्छिष्टमधरं कुरु ।
उत्कण्ठिताऽसि चेद् भद्रे ! वामं कर्णं दशस्व मे ।।

एक कोई साम गायन करने वाले वेद-पाठी थे। विवाह के बाद जब वे अपनी पत्नी के साथ सो रहे थे तो रतिक्रीडा के प्रसंग में उनकी पत्नी ने उनका चुम्बन करना चाहा। इस पर वेदपाठी जी ने उसे रोकते हुए कहा कि मेरे होठ सामगायन के कारण बहुत ही पवित्र हैं। इन्हें तुम चूमकर जूठा मत करो। हाँ, तुम्हारी बहुत ही प्रबल इच्छा हो तो जरा सा हमारा बायाँ कान काट लो, पर ओठों को जूठा मत करो।

अशुद्ध शब्दों के छिपने की जगह

वैयाकरणकिराताादपशब्दमृगाः क्व यान्तु सन्त्रस्ताः ।
ज्योतिर्नट-विट-गायक-भिषगानन-गह्वराणि यदि न स्युः ।।

वैयाकरणरूपी किरात (वनेचर) से त्रस्त होकर अपशब्द रूपी मृग कहाँ जाकर छिपते और अपनी जान बचाते अगर ज्योतिषी, नर्तक, विट, गायक और वैद्यों के मुखरूपी गुफायें न होतीं। तात्पर्य यह कि व्याकरण के पण्डितों के डर से भगकर अशुद्ध शब्द इन्हीं लोगों के मुँह में जाकर छिपते हैं और अपनी जान बचाते हैं!

साहूकार यमराज से भी बढ़कर

अन्तकोऽपि हि जन्तूनामन्तकालमपेक्षते।
न कालनियमः कश्चिदुत्तमर्णस्य विद्यते॥

मनुष्यों को मारने के लिए यमराज भी उनके अन्तकाल की प्रतीक्षा करता है, उसके पहले नहीं मारता। परन्तु साहूकार के लिए कोई समय का नियम नहीं होता। वह जब चाहे तभी अपना कर्ज बसूल करने के लिए लोगों पर चढ़ाई कर सकता है।

वह मूर्ख नहीं, मूर्खसम्राट् होता है

काव्यं करोतु परिजल्पतु संस्कृतं वा
सर्वाः कलाः समधिगच्छतु वाच्यमानाः।
लोकस्थितिं यदि न वेत्ति यथानुरूपां
सर्वस्य मूर्खनिकरस्य स चक्रवर्ती॥

चाहे कोई व्यक्ति अच्छी से अच्छी कविता करें, चाहे खूब संस्कृत में ही बोला करें और चाहे संसार की सारी कलायें जानता रहे परन्तु यदि वह लोकस्थिति से यथावत् परिचित न हो तो उसे समस्त मूर्ख-

जगत् का सम्राट् ही समझना चाहिए। यदि मनुष्य को लोकव्यवहार का ज्ञान नहीं तो उसका महान् पाण्डित्य भी बेकार है ?

शृङ्गारी कवि भारी अनर्थकारी

यदा प्रकृत्यैव जनस्य रागिणो हृदि प्रदीप्तो ननु मन्मथानलः।
तदा किमित्येवमनर्थपण्डितैः कुकाव्यहव्याहुतयो निवेशिताः॥

जब मनुष्य स्वभाव से ही विषय-वासना से युक्त हो जाता है और उसके हृदय में स्वयं ही काम की अग्नि जोरों से धधकती रहती है तो फिर ये अनर्थ के आचार्य शृङ्गारी कवि क्यों इस आग में अपनी कुत्सित कविताओं की आहुति डाला करते हैं तथा उसे और भी अधिक धधकाया करते हैं ?

पाणिनि की परम स्वच्छन्दता !

पाणिनेर्न नदी[१] गङ्गा यमुना च स्थलो नदी।
नरः स्वातन्त्र्यमापन्नो यदिच्छति करोति तत्॥

पाणिनि न गङ्गा को नदी मानते हैं न यमुना को। वे स्थली (जमीन) को ही नदी मानते हैं। कारण यह है कि जो मनुष्य सर्वथा स्वच्छन्द हो जाता है वह जो चाहता है वही करता है। उचित-अनुचित पर ध्यान नहीं देता।

---

१. पाणिनि के व्याकरण में "नदी" शब्द पारिभाषिक शब्द है जो दीर्घ ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग शब्दों का बोधक होता है। तदनुसार स्थली शब्द नदी है। पर गंगा और यमुना आदि आकारान्त शब्द "नदी" नहीं कहलाते !

दोनों के दोनों ही महामूर्ख

रसास्वादनवेलायां शब्दोत्पत्ति-विचारकः ।
नीवीस्रंसनवेलायां वस्त्रमूल्योपकल्पकः ।।

बहुत से विद्वान्—विशेषकर वैयाकरण—किसी कविता के रसास्वादन के समय उसके किसी शब्द की उत्पत्ति पर ही उलझ जाते हैं और ऊसी का विचार करने लगते हैं। ऐसे लोग उसी प्रकार अव्यवहारिक और उपहसनीय माने जाते हैं जैसे कोई पुरुष स्त्री की नीवी खोलने के समय उस वस्त्र के मूल्य का विचार करने लगे !

ऐसे विद्वान् जो केवल द्वन्द्व समास ही जानते हों !

विद्वानसाधुशब्दो विस्मृतलिङ्गो नपुंसकप्रकृतिः ।
अविदितसकलसमासोऽसत्सु सदा द्वन्द्वमेव जानाति ।।

ऐसे भी बहुत लोग अपने को विद्वान् मानते हैं जो अशुद्ध शब्द ही बोला करते हैं, जिन्हें लिङ्गों का भी स्मरण नहीं रहता और जिनकी प्रकृति भी गपुंसकों जैसी होती है। ऐसे लोग सभी समास भी नहीं जानते। अगर जानते हैं तो केवल द्वन्द्व समास और सदा उसी का सबके साथ प्रयोग किया करते हैं !

ऐसे विद्वान्, जो लट् प्रत्यय को भी भूल चुके हैं !

नासाथूत्कृतिमिश्रैर्मिथ्याकासैः कुकण्ठटङ्कारैः ।
पृष्टो विघ्नं कुरुते विस्मृतलट्प्रत्ययो विद्वान् ॥

जो लोग लट् प्रत्यय को भी भूल चुके हैं ऐसे तथाकथित विद्वान् किसी के कुछ पूछने पर अपना अज्ञान छिपाने के लिए नाक छिरकने, थूकने, झूठे ही खाँसने तथा कण्ठ की कठोर आवाज से विघ्न ही उपस्थित किया करते हैं। साफ-साफ यह नहीं कहते कि "यत् पठितं तद् गुरवे समर्पितम्"।



८--व्यंग्य एवं कटाक्ष

एक तेली के प्रति

अमी तिलास्तैलिक नूनमेतां स्नेहादवस्थां भवतोपनीताः ।
द्वेषोऽभविष्यद् यदमीषु नूनं तदा न जाने किमिवाऽकरिष्यः ।।

किसी व्यक्ति ने किसी तेली को तिल का तल निकालते हुए देखकर कहा—

अजी महाशय तैलकार! धन्य हो आप। तिलों में तो स्नेह[1] ही होता है फिर भी आपने इनकी यह दुर्दशा की! यदि कदाचित् इनमें द्वेष होता तो न जाने आप क्या-क्या कर डालते?

एक मित्र के प्रति

उपकृतं बहु तत्र किमुच्यते सुजनता प्रथिता भवता परम् ।
विदधदीदृशमेव सदा सखे सुखितमास्व ततः शरदां शतम् ।।

वह भाई! तुमने मेरा बड़ा उपकार किया। उसके विषय में क्या कहना! अच्छी सज्जनता दिखाई तुमने! मित्र, बस ऐसा ही सदा उपकार किया करो। आशीर्वाद है, सौ वरष तक सुख से जिओ?

काने महाराज से प्रश्न

आखण्डलः सहस्राक्षः विरूपाक्षस्त्रिलोचनः ।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे को भवानेकलोचनः ।।

एक आदमी ने किसी काने को देखकर पूछा—कहिये भाई, इन्द्र की तो सहस्र आँखें होती है, शंकर जी को तीन आँखें होती है तथा और सब लोगों को दो-दो आँखें होती हैं। पर आपकी तो एक ही आँख है, भला बतलाइये तो, आप कौन हैं ?

एक अपूर्व देवता

उरःस्थदारो भगवान् रमेशः मुखस्थदारो भगवान् प्रजेशः ।
पार्श्वस्थदारो भगवान् उमेशः शिरःस्थदारोऽयमभूतपूर्वः ॥

कचहरी के एक महकमे में काम करने वाले लोग शिरस्तेदार कहलाते हैं। किसी संस्कृत के पण्डित ते उनका शुद्ध नाम शिरःस्थदार समझ कर आश्चर्य से कहा—

भगवान् विष्णु उरःस्थदार[1] हैं, भगवान् ब्रह्मा मुखस्थदार[2] है, और भगवान् शंकर पार्श्वस्थदार[3] है। यह तीनो तो प्रसिद्ध हैं पर आज यह एक नये शिरःस्थदार[4] देवता कहाँ से आ गये। ये तो इन तीनों से भी आगे निकल गये।

रामचन्द्रजी के प्रति एक कठोर व्यङ्ग्योक्ति

साधु साधु रघुनाथ यत्त्वया पर्यणायि जनकस्य कन्यका ।
कार्यमेतदपरेण दुष्करं युक्तमेतदजवंशजन्मनः ॥

---

१. उरःस्थदार—जिस की स्त्री छाती पर रहती हो।
२. मुखस्थदार—जिसकी स्त्री मुख में रहती हो।
३. पार्श्वस्थदार—जिसकी स्त्री बगल में रहती हो।
४. शिरःस्थदार—जिसकी स्त्री शिर पर रहती हो।

रघुनाथ जी, आपने जो जनक की कन्या के साथ विवाह कर लिया, इसके लिए आपको अनेकानेक धन्यवाद ! भला ऐसा कठिन काम और कौन कर सकता है ? परन्तु आप तो अज[1] के वंश में उत्पन्न हुए हैं, अतः आपके लिए तो यह शोभा की ही बात है !

विना परिश्रम के पण्डितराज

गुरोर्गिरः पञ्चदिनान्यधीत्य वेदान्तशास्त्राणि दिनत्रयञ्च ।
अमी समाघ्राय च तर्कवादान् समागताः कुक्कुटमिश्रपादाः ॥

मीमांसाशास्त्र को पाँच दिनों में पढ़कर, वेदान्तशास्त्र के सकल ग्रन्थों को तीन दिनों में समाप्त कर तथा न्याय-शास्त्र के सकल सिद्धान्तों को सूँघ-साँघ कर पण्डितराज बने हुए ये आचार्य श्री कुक्कुटमिश्रपाद आ गये ! यह देखिये, कैसा अद्‌भुत पाण्डित्य है ?

त्रैलोक्यमोहिनी महिला

दर्शेन्दु - पूर्णवदनाऽञ्जन - पुञ्ज-गौरी
मार्जारिचारुनयना घटपीनमध्या ।
प्रोत्तुङ्ग-पीन-कुच-चुम्बित - नाभिदेशा
त्रैलोक्यमोहवसतिः खलु कामिनी सा ॥

अहा, वह स्त्री कितनी सुन्दर है ? अमावस्या के पूर्णचन्द्र के समान तो उसका वदन है, अञ्जन के ढेर के समान गोरी है, बिल्ली की

१ यहाँ अज शब्द के दो अर्थ हैं । एक—दशरथ के पिता अज और दूसरा - बकरा ।

आँखों के समान सुन्दर आँखें हैं, और घड़े के समान मोटी कमर है! फिर उसके उत्तुङ्ग और पीन स्तनों के लिए क्या कहना जो नाभि तक लटके हुए हैं! इस अपूर्व सुन्दरता के कारण वह तीनो लोकों को लुभा लेने वाली विश्व की एक बेजोड़ महिला है।

कितनी विचारशील स्त्री !

भाण्डानि शतसाहस्रं भग्नानि मम मस्तके।
अहो गुणवती भार्या भाण्डमूल्यं न याचते ॥

एक झगडालू और लड़ाकू स्त्री के पति ने अपनी स्त्री के विवेक की प्रशंसा करते हुए कहा—

इस मेरी स्त्री ने मेरे मस्तक पर सौ-सौ और हजार-हजार हँडिया-पतुकी फोड दिया होगा। फिर भी इतनी विचारशील और समझदार है कि हमसे कभी उन वर्तनों का मूल्य नहीं माँगती!

ऐसी स्त्री को जितना भी धन्यवाद दिया जाय, थोड़ा ही है!



६--समाज के अनोखे चित्र

भिक्षुकों के बारह गुण

उच्चैरध्ययनं पुरातनकथा स्त्रीभिः सहालापनं
तासां बालक-लालनं पतिनुतिस्तत्पाकमिथ्यास्तुतिः ।
सन्देशस्य करावलम्बनविधिर् वैदग्ध्यमत्यद्भुतं
होरा-गारुड-मन्त्र-तन्त्ररचना भिक्षोर्गुणा द्वादश ।।

खूब जोर-जोर से बोलना या गाना आदि गाना, पुरानी-पुरानी कथायें कहना, स्त्रियों के साथ बातें करना, उनके पुत्रों का लाड़-प्यार करना, उनके पतियों की प्रशंसा करना, उनके घर की रसोई की मिथ्या प्रशंसा करना, किसी के सन्देश को हाथोंहाथ पहुँचाने का भार ले लेना, गजब की पण्डिताई करना तथा ज्योतिष, गारुड मन्त्र एवं तन्त्र विद्याओं को जानना—ये भिक्षुओं के बारह गुण हैं अर्थात् ठगने के तरीके हैं।

मूर्खों के जीने के छः उपाय

कौपीनं भस्मना लेपो दर्भा रुद्राक्षमालिका ।
मौनमेकान्तिता चेति मूर्खसञ्जीवनानि षट् ।।

लँगोटी धारण करना, शरीर में भस्म लगाये रहना, कुश की चटाई पर बैठना तथारुद्राक्ष की माला धारण करना ये छः मूर्खों के जीने के उपाय हैं क्योंकि अन्धविश्वासी जनता इन लक्षणों से युक्त मूर्ख लोगों

को ही भारी विद्वान् और महात्मा समझ कर खूब खिलाती-पिलाती हैं।

तुरन्त विश्वास पैदा करनेवाली बातें

सदा जपपटो हस्ते मध्ये मध्येऽक्षिमीलनम्।
सर्वं ब्रह्मेतिवादश्च सद्यः प्रत्यय - हेतवः ॥

हमेशा हाथ में जप-माला धारण किये रहना, बीच-बीच में आँखें मूँदें रहना तथा 'संसार में सब कुछ ब्रह्म ही है, उसके सिवाय कुछ नहीं है' ऐसा उपदेश देते रहना; यह तीन बातें मनुष्यों में तुरन्त विश्वास पैदा करने वाली होती हैं। क्योंकि इन बातों से लोग समझते हैं कि यह बिल्कुल पहुँचा हुआ महात्मा है।

वेष-भूषा का महत्त्व

वस्त्रेण किं स्यादिति नैव वाच्यं वस्त्रं सभायामुपकारहेतुः।
पीताम्बरं वीक्ष्य ददौ तनूजां दिगम्बरं वीक्ष्य विषं समुद्रः ॥

वस्त्र के अच्छे-बुरे होने से मनुष्य के सम्मान में क्या फरक पड़ता है ऐसा कभी नहीं कहना चाहिए। क्योंकि वस्त्र ही सभा-समारोहों में मनुष्य के लिए बड़ा उपकारक और सहायक होता है। देखिये तो सही, समुद्रमन्थन के समय विष्णु को सुन्दर पीताम्बर धारण किये हुए देखकर समुद्र ने उन्हें अपनी कन्या लक्ष्मी को दान दे दिया और शङ्कर को दिगम्बर अर्थात् नंग-धडंग देखकर उन्हें विष दे दिया।

सेवकों की यह विचित्र हालत

आहारे बडवानलश्च शयने यः कुम्भकर्णायते
सन्देशे बधिरः पलायनविधौ सिंहः शृगालो रणे ।
अन्धो वस्तुनिरीक्षणेऽथ गमने खञ्जः पटुः क्रन्दने
भाग्येनैव हि लभ्यते पुनरसौ सर्वोत्तमः सेवकः ।

साधारणतः जो नौकर-चाकर मिलते हैं, उनकी स्थिति यह होती है कि भोजन करने में तो वे बडवानल के समान होते हैं, जितना दीजिये सो सब स्वाहा ! और सोने में कुम्भकर्ण के समान, दस बार जगाइये तब भी अचेत ! कोई सन्देश कहिये तो सुनते नहीं, बहरे हो जाते हैं। पर यदि भागना हो तो क्या पूछना, सिंह का बल आ जाता है। और यदि कहीं लड़ाई-झगड़े में उठने की जरूरत हुई तो पूरे निकम्मे बन जायेंगे, सियार के समान। यदि कोई वस्तु देखने के लिए कहा जाय तो दीखता ही नहीं। कहीं जाना हो तो लँगड़ाने लगते हैं और थोड़ी भी तकलीफ हो तो खूब रोने-चिल्लाने लगते हैं। यही सभी सेवकों की सामान्य स्थिति है। ऐसी हालत में यदि किसी को कोई अच्छा नौकर मिल जाता है तो उसे बड़ा भारी भाग्य ही समझना चाहिए।

ग्रामीण की सबसे बड़ी सम्पत्ति

अन्नं किञ्चित्सलवणपूपं पुत्रं कश्चन मर्कटरूपम् ।
गेहसमीपे लभते कूपं ग्रामीणः किं गणयति भूपम् ॥

यदि ग्रामीण व्यक्ति को नमक के भी साथ खाने को रोटी मिल जाय, बन्दर के समान भी एक लड़का हो जाय और यदि घर के पास

ही पानी पीने के लिए कूआं भी सुलभ हो तो वह फिर राजा को भी क्या समझता है ?

देहाती भोजन कितना सस्ता, कितना मीठा !

तरुणं सर्षपशाकं नवौदनं पिच्छिलानि च दधीनि ।
अल्पव्ययेन सुन्दरि ! ग्राम्यजनो मिष्टमश्नाति ।।

एक ग्रामीण व्यक्ति देहाती भोजन का बखान करता हुआ अपनी प्रियतमा से कहता है—

सुन्दरी, देहाती लोगों के भोजन का क्या कहना ? नये-नये सरसों का शाग, नये चावल का भात और ऊपर से खूब छालीदार दही, इस प्रकार बहुत कम खर्चे में देहात के लोग खूब मीठा भोजन करते हैं । इतना सस्ता और इतना मीठा भोजन शहर वालों के भाग्य में कहाँ ?

वहाँ मूर्ख पुरोहितों की भी बन जाती है

ग्रामे न विद्वान् जडता प्रभोश्च विश्वासिनी तस्य च धर्मपत्नी ।
इत्थं यदि स्यादखिलं तदानीं वृहस्पतिस्तत्र पुरोहितः स्यात् ।।

ग्राम में यदि और कोई विद्वान् न हो, यजमान के घर का मालिक पूरा गँवार हो और उसकी धर्मपत्नी भी खूब विश्वासिनी हो तो वहाँ मूर्ख पुरोहित भी वृहस्पति बन जाते हैं ।

दाम्भिकों की दिनचर्या

पोठीप्रक्षालनेन क्षितिपतिकथया सज्जनानां प्रवादैः
प्रातर्नीत्वार्धयामं कुश-कुसुम-समारम्भण-व्यग्रहस्ताः ।

पश्चादेते निमज्जत्-परयुवतिकुचाभोग-दत्तेक्षणार्थाः

प्राणायामापदेशादिह सरिति सदा वासराणि क्षिपन्ति ॥

जो दाम्भिक पुरुष प्रतिदिन स्नान करने के लिए नदी के किनारे आया करते हैं उनकी दिनचर्या का इस पद्य में बहुत ही सटीक वर्णन किया गया है। तीरवासी पाठकों को इसका अच्छा अनुभव हो सकता है। श्लोकार्थ इस प्रकार है—

ये दाम्भिक महात्मा जब स्नान-सन्ध्या आदि करने के लिए नदी के किनारे आते हैं तो पहले कुछ देर तक तो चौकी-चबूतरा आदि धोते हैं। फिर कुछ देर तक राजा-महाराजाओं की कथा-कहानी और बड़े लोगों की निन्दा-प्रशंसा में समय बिताते हैं। इस प्रकार प्रातःकाल का आधा समय बिता कर फिर बड़ी फुर्ती के साथ कुश और फूल आदि पूजा की सामग्री इकट्ठा करते और इसके पश्चात् जब ये स्नान करके प्राणायाम करने बैठते हैं तो उसी के बहाने नदी के तट पर बैठे-बैठे स्नान करती हुई युवतियों के कुचलकलशों को थोड़ी तिर्छी निगाह से चुपके-चुपके देखा करते हैं। ये दम्भी धार्मिक जन इसी प्रकार अपने सारे दिन बिताया करते हैं।

धनिकों के यहाँ कवियों की यह दुर्गति !

निद्राति स्नाति भुङ्क्ते चलति कचभरं शोषयत्यन्तरास्ते

दीव्यत्यक्षैर्न चायं गदितुमवसरो भूय आयाहि याहि ।

इत्युद्दण्डैः प्रभूणामसकृदधिकृतैः वारितान् द्वारि दीनान्

अस्मान् पश्याब्धिकन्ये ! सरसिरुहरुचामन्तरङ्गैरपाङ्गैः ॥

धनी पुरुषों के दरवानों द्वारा बार-बार लौटाये जाने पर किसी गरीब विद्वान् की लक्ष्मी के प्रति उक्ति—

'अभी नींद में हैं, अभी स्नान कर रहे हैं, अभी भोजन कर रहे हैं, अभी टहल रहे हैं, अभी बाल सुखा रहे हैं, इस समय तो अन्तःपुर में हैं, अब जूआ खेल रहे हैं, यह बात करने का समय नहीं है, फिर आइयेगा, इस समय जाइये।' इस प्रकार की बातों से धनी तथा राजपुरुषों के उद्दण्ड द्वारपालों द्वारा बार-बार रोके गये हम दीन लोगों के ऊपर भी तो, हे लक्ष्मी, एक बार अपने नेत्रकमलों के अपांगों से देखने की कृपा करो! कितने दिनों तक हम लोग इस प्रकार दरवानों से धक्के खाते रहेंगे?

दरबारों तथा बड़े-बड़े आफिसों का यह कितना यथार्थ चित्रण है?

सास-ननद् द्वारा नववधू की दुर्दशा

ननान्दा सानन्दा हसितवदनाऽभूद् वहिनिका
कृतार्था च श्वश्रूः कुपितदृशि पत्यौ मयि सखि।
स चेदुच्चैर्ब्रूते कठिनवचनैस्तर्हि सकलाः
करिष्यन्ति प्रायो व[illegible]नरहितास्ताण्डवविधिम्॥

एक कुलीन नवविवाहिता वधू दुष्ट सास-ननद द्वारा की जाने वाली अपनी दुर्दशा का वर्णन एक सखी से करती है—

सखि! घर की हालत क्या कहूं? जब मेरे पतिदेव मुझपर कभी कुपित [illegible]ते हैं तो ननँद मारे आनन्द से फूली नहीं समाती। बहन हँसने लगत[illegible] ऐसी प्रसन्न होती है जैसे उसकी साध पूरी हो गयी। [illegible] इतना ही है पर यदि कहीं मेरे पति डाँट-फटकार सुना द[illegible]लगता है कि ये सब साड़ी खोल-खोल कर नाचने तक लगेंगी!

एक ही तीर में तीन-तीन शिकार

अन्धं दरिद्रमथ च प्रियया विहीनं
वीक्ष्येश्वरो वदति याच वरं त्वमेकम् ।
नेत्रे न नापि वसु नो वनितां स वव्रे
छत्राभिराममुतदर्शनमित्युवाच ॥

एक आदमी अन्धा, दरिद्र और साथ ही स्त्रीरहित भी था। बहुत आराधना करने पर भगवान् ने दर्शन देकर उससे कहा कि वर माँगो। पर उसने धन, नेत्र अथवा स्त्री आदि न माँगकर एक ही वर माँगा और कहा कि भगवन्! मुझे केवल सुवर्ण के छत्र से शोभित पुत्र को देखने का वर दीजिये। इसके अतिरिक्त मुझे और कुछ नहीं चाहिए। कितना चालाक था याचक!

भाग्यशाली जामाता

भार्या ज्येष्ठा शिशुः श्यालः श्वश्रूः स्वातन्त्र्यवर्त्तिनी ।
श्वसुरस्तु प्रवासी च जामातुर् भाग्यकारणम् ॥

यदि अपनी ही स्त्री जेठी हो, साले बच्चे हों, सास अपने मन के अनुकूल रहती हो और ससुर परदेश में रहते हों तो ये सभी बातें दामाद के लिए बड़े सौभाग्य की सूचक होती हैं। क्योंकि ऐसी स्थिति में दामाद लोग खूब खुलेआम मौज उड़ा सकते हैं और ससुराल का काफी धन भी हाथ लगा सकते हैं।

रात्रिपाठशाला में भेदविद्या की शिक्षा

भ्रातॄणां सततं भेदः कथं नाम न जायते ।
अध्यापितानां पत्नीभिर्द्वेषविद्यां सदा निशि ॥

भाइयों में परस्पर फूट और वैर क्यों न हो जब कि उन्हें रात की पाठशाला में पत्नी-अध्यापिकाओं द्वारा बराबर द्वेष-विद्या की ही शिक्षा दी जाती है और फूट के ही पाठ पढ़ाये जाते हैं।

आज-कल इन पाठशालाओं की दिनोंदिन संख्या बढ़ती जा रही है। यह समाज के लिए भारी शुभ लक्षण है !

मनुष्यों के बाहरी पञ्च प्राण

गृहिणी, भगिनी तस्याः, श्वसुरौ श्याल इत्यपि ।
प्राणिनां कलिना सृष्टाः पञ्च प्राणा इमेऽपरे ॥

मनुष्य के शरीर के भीतर जो पाँच प्राण रहते हैं उन्हें तो सब लोग जानते हैं परन्तु अब पाँच और ऐसे प्राणों का पता लगा है जो शरीर के बाहर रहते है। वे प्राण ये हैं—पहला प्राण स्त्री, दूसरा प्राण स्त्री की बहन अर्थात् साली, तीसरा प्राण सास, चौथा प्राण ससुर और पाँचवाँ प्राण शाला ! इनमें अन्तर यही है कि भीतरी पञ्चप्राण भगवान् के बनाये हुए हैं और ये बाहरी पञ्चप्राण कलियुग महाराज के।

परदेश से घर जानेवाले व्यक्ति की यह विचित्र हालत

नृत्यति गायति विहसति, हृदयेन धृतां प्रियां विचिन्तयति ।
सम-विषमं च न पश्यति, गृहगमन-समुत्सुकः पुरुषः ॥

जो व्यक्ति बहुत दिनों तक परदेश में रहने के बाद घर जाने लगता है तो उसकी जाने के दिन बड़ी विचित्र हालत हो जाती है। वह घर पहुंचने की उत्सुकता में कभी तो नाचता है, कभी गाता है, कभी हँसता है, कभी मन ही मन अपनी पत्नी की बातें सोचता है, और यहाँ तक कि चलते-फिरते समय ऊँची-नीची जमीन का भी ख्याल नहीं रखता, बेहोश चलता है।

वृद्ध की भार्या केवल परोपकार के लिए

हस्ते गृहीताऽपि पुरस्कृताऽपि स्नेहेन नित्यं परिवर्द्धिताऽपि।
परोपकाराय भवत्यजस्रं वृद्धस्य भार्या करदीपिकेव॥

हाथ से पकड़े रहने पर भी, बराबर सामने रखने पर भी तथा बराबर स्नेह देते रहने पर भी वृद्ध पुरुष की युवती स्त्री हाथ के दीपक के समान सदा दूसरों के ही काम आया करती है!

नवविवाहित किसान युवक की कठिनाई

गृहमभितः पुरतरुणाः परिणतकेदारपरिसरे हरिणाः।
इति कृषको युवजानिर् गतागतैर्यामिनीं नयति॥

एक तरफ तो घर के चारों ओर नगर के नौजवान मँडराते रहते हैं और दूसरी तरफ पके हुए खेत के आस-पास हिरनों का झुण्ड खेत चरने की ताक में। इसे देखकर विचारा युवती स्त्री वाला किसान युवक कभी घर में तो कभी खेत में दौड़ते ही अपनी रात बिता देता है। उसे निश्चिन्त होकर सोने का कभी समय ही नहीं मिलता! यह कितनी भयंकर कठिनाई है?

एक मनचले बुड्ढे की बहक

आपाण्डुता शिरसि यच्च वली कपोले
दन्तावली विगलिता न च मे विषादः ।
एणीदृशो युवतयः पथि मां विलोक्य
तातेति भाषणपराः शतकुन्तघातः ॥

शिर के सब बाल पक गये, गालों में झुर्रियाँ पड़ गयीं और सबके सब दाँत भी गिर गये पर इसका मुझे लेशमात्र भी विषाद नहीं। पर रास्ते में चलते समय मृगों के समान नेत्र वाली युवती स्त्रियाँ जब मुझे "बाबा-बाबा" कहने लगती हैं तो मुझे सौ-सौ भाले-बर्छियों की चोट-सी लगने लगती हैं।

१०–विचित्र आशंकायें

कहीं काले-काले बाल सफेद न हो जायँ

यथा यथा भोजयशो विवर्धते सितां त्रिलोकीमिव कर्त्तुमुद्यतम् ।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते प्रियालकाली - धवलत्वशङ्कया ।।

महाराज भोज का यश, मानों तीनों लोकों को सफेद बना डालने के लिए, जैसे-जैसे बढ़ रहा है, वैसे-वैसे मेरा हृदय इस शंका से आकुल हो रहा है कि कहीं हमारी प्रिया के ये प्यारे काले-काले बाल भी सफेद न हो जायँ ।

अगर कहीं ऐसा हुआ तो जवानी का सारा आनन्द ही खतम हो जायगा ।

कहीं मुखचन्द्र पर ही ग्रहण न लग जाय !

झटिति प्रविश गेहं मा बहिस्तिष्ठ कान्ते
ग्रहणसमय - वेला वर्त्तते शीतरश्मेः ।
तव मुखमकलङ्कं वीक्ष्य राहुः स नूनं
ग्रसति तव मुखेन्दुं पूर्णचन्द्रं विहाय ।।

एक बार चन्द्रग्रहण के समय कोई चन्द्रमुखी युवती अपने दरवाजे पर बैठी हुई थी। इसी समय बाहर से उसका घबड़ाया हुआ भोला-भाला पति आया और कहने लगा—

अरे भाई, तुम कैसी नादान स्त्री हो। यह चन्द्रमा पर ग्रहण लगने का समय है और तुम घर से बाहर निकल कर दरवाजे पर बैठी हो ? उठो-उठो, घर के भीतर चलो। क्या तुमको इसका होश-हवाश नहीं है कि चन्द्रमा से अधिक सुन्दर और कान्तिमय तुम्हारे मुखमण्डल को देखकर कहीं राहु चन्द्रमा को छोड़कर तुम्हारे मुखचन्द्र को ही न ग्रस ले !

———

११--उपदेश और सुझाव

मूर्ख रहना ही सबसे अच्छा

मूर्खत्वं सुलभं भजस्व कुमते मूर्खस्य चाष्टौ गुणाः

निश्चिन्तो बहुभोजकोऽतिमुखरो रात्रिंदिवं स्वप्नभाक् ।

कार्याकार्यविचारणेऽन्धबधिरो मानापमाने समः

प्रायेणाऽऽमयवर्जितो दृढवपुर्मूर्खः सुखं जीवति ॥

एक कोई अशिक्षित व्यक्ति पढ़ने-लिखने की तैयारी कर रहा था। उसे ऐसा करते देख एक दूसरे व्यक्ति ने उसे इस प्रकार समझाया—

अरे मूर्ख ! यह क्या पढ़ने-लिखने के झमेले में पड़ने जा रहे हो। मूर्ख ही बने रहो। क्योंकि यह पढ़ने-लिखने की अपेक्षा अधिक आसान है। और दूसरी बात यह है कि मूर्खों में आठ गुण भी होते हैं जो पढ़े-लिखे लोगों में नहीं होते। जैसे—पहला गुण यह कि वे बराबर निश्चिन्त रहते है। दूसरा यह कि खूब खाते हैं। तीसरा यह कि जो मन में आवे बोला करते हैं। चौथा यह कि रात-दिन मजे से सोया करते हैं। पाँचवाँ यह कि उचित-अनुचित का विचार करने के झंझट से अलग रहते हैं। छठवाँ यह कि मान-अपमान की वे परवाह नहीं करते, दोनों में ही समान रहते हैं। सातवाँ यह कि वे प्रायः नीरोग रहा करते हैं और आठवाँ यह कि वे शरीर से काफी मजबूत हुआ करते हैं। अतः मूर्ख रहना ही सबसे उत्तम है।

पैसा कमाओ पैसा ?

बुभुक्षितैर् व्याकरणं न भुज्यते
पिपासितैः काव्यरसो न पीयते ।
न छन्दसा केनचिदुद्धृतं कुलं
हिरण्यमेवार्जय निष्फलाः क्रियाः ।।

भूख लगने पर व्याकरण नहीं खाया जाता और प्यास लगने पर काव्य का रस भी नहीं पिया जाता। और न वेद पढ़कर ही किसी ने कुल का उद्धार किया। अतः पैसा ही कमाने का काम करो, इसके अलावा यह सारा पढ़ना-लिखना बेकार का काम है, निरर्थक है।

सभा में विजयी होने का तरीका

न भेतव्यं न बोद्धव्यं न श्राव्यं वादिनो वचः ।
झटिति प्रतिवक्तव्यं सभासु विजिगीषुभिः ।।

जो लोग सभा में विजय प्राप्त करना चाहें उन्हें किसी से डरना नहीं चाहिए। साथ ही न उन्हें प्रतिवादी की बातें सुननी चाहिए और न उन्हें सुनने का ही यत्न करना चाहिए। बस, उचित-अनुचित जो कुछ आवे उसे तुरन्त कह डालना चाहिए। रुकने की कोई जरूरत नहीं। जहाँ रुके कि ताली बजी और हार हुई !

विवाद में जीतने का उपाय

उच्चैरुद्घुष्य जेतव्यं मध्यस्थश्चेदपण्डितः ।
पण्डितो यदि मध्यस्थः पक्षपातोऽधिरोप्यताम् ।।

यदि सभा में कोई मध्यस्थ विद्वान् न हो तो खूब जोर-शोर से बोलकर ही विपक्षी को परास्त कर देना चाहिए और यदि मध्यस्थ विद्वान् हो और वह अपने अनुकूल निर्णय न दे तो उस पर पक्षपात करने का दोष लगा कर अपने विजय का प्रचार करना चाहिए।

कवियों को परामर्श

काव्यं करोषि किमु ते सुहृदो न सन्ति
ये त्वामुदीर्णपवनं न निवारयन्ति।
गव्यं घृतं पिब निवातगृहं प्रविश्य
वाताधिका हि पुरुषाः कवयो भवन्ति॥

एक कविता-लेखक से उसके किसी हितचिन्तक व्यक्ति ने कहा—कविजी महाराज! आप कविता लिखते हैं पर क्या आपके कोई मित्र नहीं हैं जो आपको इस काम से रोकते नहीं है। यह तो आप में वात की अधिकता का द्योतक है। अतः आप अब से भी कविता लिखना छोड़िये और निर्वात घर में रहकर गाय का घी पीजिये। क्योंकि जिन लोगों में वात की अधिकता हो जाती है वे ही लोग कवि होते हैं, और कविता लिखा करते हैं।

आचारियों को एक उचित सलाह

तावत् दीर्घं नित्यकर्म यावत् स्याद् द्रष्टृमेलनम्।
तावत्संक्षिप्यते सर्वं यावद् द्रष्टा न विद्यते॥

आचारियों और पूजा-पाठ से जीविका चलाने वाले व्यक्तियों को चाहिए कि जब तक देखने वाले लोग डटे रहें तब तक अपना नित्य-

कर्म खूब देर तक चलाते रहें। और जब देखने वाले न रहें तो सब क्रिया संक्षिप्त कर दें।

टरकाने का तरीका

यस्य किञ्चिन्न दातव्यं तस्य देयं किमुत्तरम्।
अद्य सायं पुनः प्रातः सायं प्रातः पुनः पुनः॥

यदि कोई व्यक्ति कुछ माँगने के लिए आवे और उसे कुछ देने का विचार न हो तो उसे क्या उत्तर देना चाहिए? उसे उत्तर देना चाहिए कि आज सायंकाल आइयेगा। यदि सायंकाल आ जाय तो कहना चाहिए कि प्रातःकाल आ जाइयेगा। यदि प्रातःकाल भी आ जाय तो पुनः साम को आने के लिए कहना चाहिये। इस प्रकार उसे बार-बार साम-सबेरे बुलाते रहना चाहिए। दो-चार दिनों के बाद तो अन्त में वह हार कर आना-जाना स्वयं ही बन्द कर देगा।

लेखकों को एक उचित सलाह

एष्टव्याः बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत्!
कर्त्तव्या बहवो ग्रन्था यद्यकोऽपि प्रथां व्रजेत॥

मनुष्यों को चाहिए कि वे अनेक पुत्र पैदा करें। क्योंकि उनमें यदि एक भी गया चला जाय तो पिता का उद्धार हो सकता है। इसी प्रकार लेखकों को चाहिए कि वे अनेक ग्रन्थ लिखें। क्योंकि उनमें यदि एक भी ग्रन्थ लोकप्रसिद्ध हो जाय और कहीं परीक्षा में लग जाय तो लेखक का सारा परिश्रम सफल हो सकता है।

व्याकरण पढ़ना अत्यन्त आवश्यक

यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र व्याकरणम् ।
स्वजन:श्वजनो माभूत् सकलं शकलं सकृत् शकृच्चैव ।।

किसी शुद्ध उच्चारण के प्रेमी पिता ने अपने पुत्र से व्याकरण पढ़ने पर बल देते हुए कहा—

बेटा ! यद्यपि तुम ज्यादा नहीं पढ़ना चाहते, यह मैं जानता हूँ । तथापि तुम व्याकरण तो कुछ अवश्य पढ़ लो । क्योंकि व्याकरण बिना पढ़े शुद्ध उच्चारण का ज्ञान न होने के कारण कहीं ऐसा न हो कि तुम स्वजन के स्थान पर श्वजन, सकल के स्थान पर शकल तथा सकृत् के स्थान पर शकृत् बोल दो और ऐसा ही लिख भी लो । क्योंकि केवल दन्त्य 'स' और तालव्य 'श' के भेद से इन शब्दों के अर्थ अत्यन्त भिन्न हो जाते हैं । जैसे—

स्वजन—अपना आदमी	श्वजन—कुत्ता
सकल—सब	शकल—टुकड़ा
सकृत्—एक बार	शकृत्—विष्ठा

ससुराल में अधिक दिन रहना ठीक नहीं

श्वसुरपुरनिवास: स्वर्गतुल्यो नराणां
यदि भवति विवेकी पञ्च षड् वा दिनानि ।
दधि - मधु - घृतलोभान् मासमेकं वसेच्चेद्
भवति विगतलज्जो मानवो मानहीन: ।।

ससुराल का निवास निश्चय ही मनुष्यों के लिए स्वर्गनिवास के समान सुखदायी होता है परन्तु यदि रहने वाला पुरुष विवेकी हो तो उसे पाँच-छः दिनों तक ही ससुराल में रहना चाहिए। इसके विपरीत जो मनुष्य दधि, धृत और मधु के लोभ से ससुराल में महीनों रह जाता है वह निर्लज्ज समझा जाता है ओर उसका आदर-सत्कार भी कम हो जाता है।

विना परिश्रम के अध्यापन का नुस्खा

वाच्यतां समयोऽतीतः स्पष्टमग्रे भविष्यति।
इति पाठयतां ग्रन्थे काठिन्यं कुत्र वर्त्तते॥

जब किसी कठिन विषय को पढ़ने के लिए विद्यार्थी आवें तो परिश्रम से बचने के इच्छुक अथवा अयोग्य अध्यापकों को इस प्रकरा छात्रों से कहना चाहिए कि 'बाचते जाओ, रुको नहीं, क्योंकि समय बहुत बीत गया है। कोई घबड़ाने की जरूरत नहीं" आगे सब समझ में आ जायगा इत्यादि। यदि इस रीति से अध्यापक छात्रों को पढ़ाते जायेंगे तो उन्हें कभी कोई भी कठिनाई नहीं होगी।

प्रसिद्ध होने के उपाय

घटं भिन्द्यात् पटं छिन्द्यात् कुर्यात रासभरोहणम्।
येन केन प्रकारेण प्रसिद्धः पुरुषो भवेत्॥

जो पुरुष समाज में प्रसिद्ध होना चाहे उसे घड़े फोड़कर, चाहे कपड़े फाड़कर अथवा गदहे पर चढ़कर जिस-किसी प्रकार भी प्रसिद्ध होना चाहिए. इसके लिए उचित-अनुचित का एकदम विचार नहीं करना चाहिए।

ज्योतिषियों को एक सलाह

आयुः प्रश्ने दीर्घमायुः वाच्यं मौहूर्तिकैः द्विजैः ।
जीवन्तो बहु मन्यन्ते मृता जीवन्ति किं पुनः ।।

जब कोई व्यक्ति किसी ज्योतिषी से अपनी आयु के विषय में प्रश्न करे तो चतुर ज्योतिषी को चाहिये कि वह उसको खूब लम्बी आयु बतलावे, कम न बतलावे। क्योंकि लम्बी आयु बतलाने से वह व्यक्ति जब तक जीता रहेगा तब तब ज्योतिषी का खूब आदर-सत्कार करता रहेगा। और यदि कम आयु में ही मर गया तो फिर वह पूछने तो आयेगा नहीं। अतः हर हालत में लम्बी आयु बतलाना ही ज्योतिषियों के लिए लाभदायक है।

सर्वं कोटिद्वयापेतं सर्वं कालद्वयावधि ।
सर्वं व्यामिश्रमिव च वक्तव्यं दैवचिन्तकैः ।।

साधारण ज्योतिषियों को जब समाज में अपनी प्रतिष्ठा बचाये रखनी हो तो किसी के प्रश्न पूछने पर कभी भी कोई साफ जबाब नहीं देना चाहिए। ऐसी भाषा में जवाब देना चाहिए जो "हां और ना" दोनों ओर लग सके तथा भूत और भविष्य दोनों कालों में घट सके ? अर्थात् उत्तर गोल-मटोल ही होना चाहिए, स्पष्ट नहीं।

वैद्यों को एक सलाह

भैषज्यं तु यथाकामं पथ्यं तु कठिनं वदेत् ।
आरोग्यं वैद्यमाहात्म्यात् अन्यथात्वमपथ्यतः ।।

किसी वैद्य के पास जब कोई रोगी दवा कराने के लिए आवे तो वैद्य को चाहिए कि वह दवाई तो जैसी-तैसी भी दे दे पर पथ्य खूब ही कठिन बतलावे। इसके बाद अगर रोगी नीरोग हो जाय तो उसे अपने कौशल तथा दवाई की उत्तमता का परिणाम विज्ञापित करना चाहिए और यदि रोगी नीरोग हुआ तो रोगी पर ही अपथ्य करने का दोष मढ़ देना चाहिए।

नये वैद्य-डाक्टरों के लिये यह कितना अच्छा नुस्खा है!

जीभ को एक उपयोगी सलाह

जिह्वे प्रमाणं जानीहि भोजने भाषणेऽपि च।
अतिभुक्तिरतीवोक्तिः सद्यः प्राणापहारिणी॥

जीभ के एक हितैषी व्यक्ति ने उसे एक उपयोगी सलाह देते हुए कहा—

जिह्वे, तुम भोजन करना और भाषण करना तो खूब जानती हो पर साथ-साथ उसका प्रमाण भी जाना करो कि कितना खाना चाहिये और कितना बोलना चाहिये। मनमाना मत करो। क्योंकि अधिक खाना और अधिक बोलना तत्काल ही प्राणों का घातक भी हो जाता है। इससे जरा सावधान रहो।

———

१२—रहस्यों का उद्घाटन

बुढ़ापे में दाँत क्यों टूटते हैं ?

मलिनैरलकैरेतैः शुक्लत्वं प्रकटीकृतम् ।
तद्रोषादिव निर्याता वदनाद् रदनावलिः ॥

"देखो जरा इन केशों की ढिठाई ! अब तक तो ये जनम से ही जीवन भर काले-कलूटे थे पर वे भी सफेद बन कर हम लोगों की बराबरी करने लगे" मानों इसी क्रोध से सब दाँत एक साथ मुँह से निकल कर बाहर आ गये । जैसे बड़े लोग कभी-कभी छोटे लोगों की ऐसी हरकतों से बिगड़ कर उठ जाते हैं ।

लक्ष्मी ब्राह्मणों के पास क्यों नहीं आतीं ?

नाथे कृतपदघातश्चुलुकिततातः सपत्निकासेवी ।
इति दोषादिव रोषान्माधवयोषा द्विजं त्यजति ॥

"ब्राह्मणों ने ही हमारे पति विष्णु को लात से मारा, ब्राह्मणों ने ही हमारे पिता समुद्र को पीकर समाप्त कर दिया, और वे बराबर ही मुझे छोड़कर मेरी सपत्नी सरस्वती की सेवा में ही रत रहते हैं" मानों इसी रोष के कारण लक्ष्मी ब्राह्मणों एवं विद्वानों को छोड़ देती हैं, उनके पास नहीं रहतीं ।

बरसात में बादल बिजली के साथ चारों ओर क्यों दौड़ते हैं ?

क्षपां क्षामीकृत्य प्रसभमपहृत्याम्बु सरितां
प्रताप्योर्वीं कृत्स्नां तरुगहनमुच्छोष्य सकलम् ।
क्व सम्प्रत्युष्णांशुर्गत इति तदन्वेषणपरा:
तडिद्दीपालोका दिशि दिशि चरन्तीह जलदा: ॥

वर्षा ऋतु में बादलों को चमकती हुई बिजली के साथ चारों ओर दौड़ते हुए देखकर एक कवि ने उसका कारण ढूँढ निकाला और कहा—

वर्षा के आगमन के पूर्व पूर्य ने अनेकों अपराध किये ! एक तो रात को बिल्कुल छोटी कर दिया। दूसरे समस्त नदियों के पानी को जबरदस्ती खींच लिया। तीसरे समग्र धरातल को संतप्त कर दिया और चौथे सम्पूर्ण तरु-लताओं को सुखा कर खतम कर डाला। इन चार बड़े-बड़े अपराधों को करने के बाद सूर्य कहीं जाकर छिप भी गये। अत: उनकी गिरफ्तारी के लिए ये बादल बिजलो की बत्ती लेकर चारों ओर उन्हें तलास रहे हैं।

मेरु पर्वत दूर क्यों रहता है ?

मेरु: स्थितोऽतिदूरे मनुष्यभूमिं परां परित्यज्य ।
भीतो भयेन चौर्याद् घोराणां हेमकाराणाम् ॥

उत्तम मनुष्यलोक को छोड़कर मेरुपर्वत अत्यन्त दूर देश में क्यों रहता है, इस डर से कि कहीं देखते-देखते चोरी कर लेने वाले भयंकर सोनार लोग उसे चुरा-चुरा कर खतम न कर डालें।

सांपों को कान क्यों नहीं होता ?

आकर्ण्य भूपाल ! यशस्त्वदीयं विधूनयन्तीह न के शिरांसि ।
विश्वम्भराभङ्गभयेन धात्रा नाकारि कर्णौ भुजगेश्वरस्य ।।

किसी कवि ने एक राजा से उनकी प्रशंसा करते हुए कहा—

राजन्, आपके अद्भुत यश को सुनकर कौन अपना शिर नहीं धूनने लगता है ? इसीसे तो विधाता ने शेष को कान नहीं दिया ताकि उनके शिर धुनने से कहीं समस्त भूमण्डल का ही विनाश न हो जाय। तभी से उनके वंशजों को भी कान नहीं होता ।

भगवान् विष्णु काठ क्यों हो गये ?

एका भार्या प्रकृतिमुखरा चञ्चला च द्वितीया
पुत्रोऽप्येकः समरविजयी मन्मथो दुर्निवारः ।
शेषः शय्या वसतिरुदधौ वाहनं पन्नगेशः,
स्मारं स्मारं स्वगृहचरितं दारुभूतो मुरारिः ।।

भगवान् विष्णु की दो स्त्रियाँ हैं, एक सरस्वती और दूसरी लक्ष्मी। इनमें से पहली स्त्री सरस्वती स्वभाव से ही मुखर हैं अर्थात् बहुत बोलने वाली हैं और दूसरी स्त्री लक्ष्मी हैं जो अपनी चंचलता के लिए प्रसिद्ध हैं। एक जो पुत्र है मन्मथ वह सारे संसार में किसी के वश का नहीं। सर्वथा स्वतन्त्र और उच्छृङ्खल। सोने के लिए शय्या है शेष, पर वह भी एक भयंकर सर्प। निवास भी जमीन पर नहीं, हमेशा समुद्र में और सवारी पन्नगराज गरुड़ ! अपने घर के परिवार तथा अन्य साधनों की इस बेढंगे रूप को सोचते-सोचते भगवान् विष्णु दुखी होकर काठ हो गये ?

भगवान् शङ्कर के हालाहल पीने का कारण क्या ?

वृद्धोक्षः प्रपलायते प्रतिदिनं सिंहावलोकाद्भिया
पश्यन् मत्तमयूरमन्तिकचरं भूषा भुजङ्गव्रजः ।
कृत्तिं कृन्तति मूषकोऽपि रजनौ भिक्षान्नमाभक्षयन्
दुःखेनेति दिगम्बरः स्मरहरो हालाहलं पीतवान् ।।

शिवजी के घर की हालत बहुत विचित्र है ! उनका एक बूढ़ा बैल है जो दुर्गाजी के वाहन सिंह को देखकर उसके डर से रोज ही भाग जाया करता है। जो शिवजी के आभूषण सर्प हैं वे भी मतवाले मयूरों को देखते हुए सदा ही इधर-उधर भागा करते हैं। एक भिक्षान्न रखने के लिए बाघ के चमड़े का झोला है जिसे अन्न खाने के लिए रात में गणेशजी का चूहा काट डालता है। अब कहीं भिक्षा मिल भी जाय तो उसका सुरक्षित रखना कठिन है। इन्हीं दुःखों के कारण शंकरजीने हालाहल पान कर लिया।

शिव जी ने हालाहलपान क्यों किया ?

अत्तुं वाञ्छति वाहनं गणपतेराखुं क्षुधार्त्तः फणी
तञ्च क्रौञ्चपतेः शिखी च गिरिजासिंहोऽपि नागाननम् ।
गौरी जह्नुसुतामसूयति कलानाथं कपालाऽनलो
निर्विण्णः स पपौ कुटुम्बकलहादीशोऽपि हालाहलम् ।।

परिवार में झगड़ा रहने पर भी किसी का किसी से प्रेम रहता ही है ऐसा देखा जाता है। परन्तु शिवजी का परिवार ऐसा विचित्र और झगड़ालू है कि उसमें किसी को किसी से पटती नहीं। बल्कि उनमें से एक दूसरे को खा जाने के लिए हमेशा तयार रहते हैं। प्रस्तुत पद्य में यही प्रसङ्ग अङ्कित है—

शिवजी के गले का हार जो सर्प है वह भूख लगने पर गणेशजी के वाहन चूहे को खा जाना चाहता है। और कार्त्तिकेय का वाहन जो मयूर है वह उस सर्प को। इधर पार्वतीजी का वाहन सिंह गणेशजी को हाथी समझ कर उन्हें खा जाना चाहता है। पार्वतीजी गंगाजी से डाह रखती हैं और शिवजी के कपाल का जो अनल है वह उनके शिर पर चन्द्रमा को नहीं देखना चाहता। इस प्रकार अपने परिवार के कलह से खिन्न होकर शंकरजी ने सवसमर्थ होते हुए भी कोई दूसरा उपाय न देखकर हालाहल पान कर लिया।

बेचारा राही बगीचे में कैसे मरा ?

सव्याधेः कृशता क्षतस्य रुधिरं दष्टस्य लालास्रवः
किञ्चिन्नैतदिहास्ति तत्कथमसौ पान्थस्तपस्वी मृतः।
आ ज्ञातं, मधुलम्पटैर्मधुकरैरारब्धकोलाहले
नूनं साहसिकेन चूतमुकुले दृष्टिः समारोपिता ॥

कोई राही किसी बगीचे में मरा पड़ा हुआ था। उसे देखकर एक दूरदर्शी व्यक्ति ने उसकी मृत्यु के कारणों पर तर्क-वितर्क करते हुए इस प्रकार उसके रहस्य का उद्घाटन किया—

यदि यह पथिक पहले से बीमार होने के कारण मरा होता तो अवश्य ही दुबला हो गया होता पर इसका शरीर अभी ज्यों का त्यों हृष्ट-पुष्ट बना हुआ है। यदि इसका शरीर कहीं कट-फट गया होता तो अवश्य खून दीखता, पर खून का कहीं पता नहीं। यदि साँप के काटने से मरा होता तो इसके मुँह से निश्चित ही लार चूता रहता पर उसका भी कहीं नामो-निशान नहीं। फिर यह बिचारा राही यहाँ अकारण मरा कैसे ? (कुछ सोच कर ओर ऊपर की ओर देख कर) अच्छा, अब मुझे इसकी मृत्यु का असली कारण मालूम हो गया ? इन आम की मंजरियों ने ही इस बेचारे की जान ले ली है। जब मधु के लोभी मधुकरों ने आकर इन मञ्जरियों पर शोर-गुल मचाना शुरू किया है तो इस पथिक की भी दृष्टि लेटे-लेटे उन मञ्जरियों पर अवश्य पड़ गयो होगी। बस, उन्हीं की मादकता से बेचारा पड़ा का पड़ा ही रह गया !

गेंद ऊपर की ओर क्यों उछलता है ?

विदितं ननु कन्दुक ते हृदयं वनिताऽधरपल्लव-लुब्धमिति ।
वनिताकर-तामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि ॥

स्त्रियों की किसी कन्दुकक्रीडा में गेंद को नीचे गिर-गिर कर भी ऊपर उछलते हुए देख कर किसी व्यक्ति ने इसके रहस्य को समझ कर गेंद से कहा—

अरे गेंद ! तुम्हारे मन की बात अब मुझे मालूम हो गयी। तुम जरूर इन वनिताओं के अधर रस का पान करना चाहते हो तभी तो इनके करकमलों द्वारा बार-बार मार खाकर और गिर-गिर कर भी ऊपर की ओर उछलते हो।

नरसिंह अवतार का कारण

अवतारत्रयं दृष्ट्वा मैथिलैः कवलीकृतम् ।
ततस्तु भगवान् साक्षात् नारसिंहं वपुर्दधौ ।।

भगवान् ने जब देखा कि उनके मत्स्य-कच्छप आदि तीन अवतारों को मैथिलों ने समाप्त कर दिया तो फिर अपने बचाव के लिए उन्होंने नरसिंह का रूप धारण किया ! जब जान पर आफत आ गयी तो क्या करें ?

कौए सबेरे 'का का' क्यों बोलते हैं ?

का काऽबला निधुवनश्रमपीडिताङ्गी
निद्रां गता दयितबाहुलतोपनद्धा ।
सा सा जहातु शयनं मिहिरोद्गमोऽयं
सङ्केतवाक्यमिति काकचया वदन्ति ।।

सबेरे कौए "कां-का" क्यों बोला करते हैं इस रहस्य का उद्घाटन करते हुए एक कवि ने "का का" इन पदों का "कौन-कौन स्त्री" यह अर्थ क बतलाया कि—

प्रायः युवती स्त्रियाँ रात में रतिक्रीडाजनित श्रम के कारण प्रियतम के बाहुपाश में आबद्ध हो बहुत देर तक सोया करती हैं। इसे देख कर कौवे कहते हैं कि अब सूर्य का उदय हो रहा है। फिर भी कौन-कौन स्त्री सो रही हैं ? जो-जो सो रही हों वे सब अब सेज छोड़ कर उठ जायें। बस इसी बात की याद दिलाने के लिए कौवे संकेत रूप से "का का का का" बोला करते हैं।

कविजी की यह कितनी ऊँची पहुँच है !

१३--अनंग का तरंग

—:०:—

स्वर्ग का परिशिष्ट भाग

मालती शिरसि जृम्भणोन्मुखी चन्दनं वपुषि कुंकुमान्वितम् ।
वक्षसि प्रियतमा मनोहरा स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः ।।

पढ़े-लिखे लोग पुस्तकों के ही परिशिष्ट भाग को जानते होंगे पर इस श्लोक में स्वर्ग के भी परिशिष्ट का वर्णन किया गया है—

मस्तक पर खिलती हुई मालती का पुष्प हो, शरीर में चन्दन और कुंकुम का सुन्दर सुगन्ध हो और गोदी में मनोहारिणी प्रियतमा विराजमान हो तो भूलोक में इसे स्वर्ग का परिशिष्ट ही मानना चाहिए । उससे कम कदापि नहीं ।

रसीली स्त्रियों का गुस्सा भी मुलायम

रोषोऽपि रसवतीनां न कर्कशो वा चिरानुबन्धी वा ।
वर्षाणामुपलोऽपि हि सुस्निग्धः क्षणिककल्पश्च ।।

रसीली स्त्रियों का रोष भी मुलायम ही होता है और वह देर तक नहीं रहता । जैसे वर्षा का पत्थर (ओला) भी चिकना होता है और क्षण भर ही में खतम हो जाता है ।

गर्मी की बेजोड़ दवा

श्रीखण्डमण्डित - कलेवरवल्लरीणां
मुक्ताफलाकुल-विशालकुचस्थलीनाम् ।
वैदग्ध्य-मुग्धवचसां सुविलासिनीनाम्
आलिङ्गनं सकलदाहमपाकरोति ॥

जो स्त्रियाँ अपने कोमल कलेवर को चन्दन के रस से अनुलिप्त रखती हैं, जिनके विशाल कुचस्थलों पर मोतियो की मालाएँ भी रहती हैं और जो सदा ही रसीली और मीठी-मीठी बातें किया करती हैं ऐसी विलासवती युवतियों का आलिङ्गन सब प्रकार के दाह और गर्मी को दूर कर देता है।

कोई भी सराहने लायक नहीं

इदमनुचितमक्रमश्च पुंसां
यदिह जरास्वपि मान्मथा विकाराः ।
इदमपि न कृतं नितम्बिनीनां
स्तनपतनावधि यौवनं रतं वा ॥

कोई स्त्री पुरुषों पर आक्षेप करती हुई कहती है—

यह पुरुषों के लिए बहुत ही अनुचित एवं अशोभनीय वात है कि वे बुढ़ापे में भी जवानों की हरकतों से बाज नहीं आते और अनुचित काम की चेष्टाएँ किया करते हैं।

इसके जबाब में किसी पुरुष ने इसी प्रकार स्त्रियों पर आक्षेप करते हुए कहा—

ठीक है, पुरुषों के लिए तो यह सर्वथा अनुचित है पर क्या स्त्रियों

के लिए यह उचित है कि वे स्तनों के लटक जाने पर भी जवानी दिखाती रहें और रतिक्रीड़ा की आदत न छोड़ें ?

एक लता पर दो-दो शैल

जाता लता हि शैले जातु लतायां न जायते शैलः ।
सम्प्रति तद्विपरीतं कनकलतायां गिरिद्वयं जातम् ॥

किसी ऊँचे स्तनों वाली युवती को देखकर किसी रसिक ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा—

शैल पर लता तो होती है पर लता पर कभी शैल नहीं होता। पर आज हमने, इसके ठीक विपरीत, कनकलता में उत्पन्न दो-दो शैल देखे, आश्चर्य है !

जाँत को आश्वासन

रे रे घट्टक मा रोदीः कं कं न भ्रमयन्त्यमूः ।
कटाक्षवीक्षणादेव कराकृष्टस्य का कथा ॥

स्त्रियों द्वारा रात-दिन घुमाये जाने के कारण एक रोते हुए जाँत को देखकर एक दयालु पुरुष उसे आश्वासन देते हैं—

अरे जांत ! मत रोवो ! तुम्हारे रोने से कुछ होने-जाने वाला नहीं। ये स्त्रियाँ तो कटाक्षमात्र से न जाने कितने लोगों को नचाया करती हैं। फिर तुमको तो ये हाथ से नचाती हैं तो तुम्हारी बात ही क्या है ?

स्तनों को दया कहाँ

स्वकीयं हृदयं भित्त्वा निर्गतौ यौ पयोधरौ ।
हृदयस्यान्यदीयस्य भेदने का कृपा तयोः ॥

जो स्तन अपने ही हृदय को फोड़कर बाहर निकल आते हैं उन्हें फिर दूसरों के हृदय को फोड़ने में दया कैसी ? जो अपना नहीं हुआ वह दूसरों का क्या होगा ?

एक पुंश्चली का अपने आलोचकों को फटकार

पृथ्वी तावत त्रिकोणा, विपुलवन - नदो - ग्राव-रुद्धं तदर्धं
तत्राप्यर्धं युवत्यः शिशु-गतवयसो रोगिणो योगिनश्च ।
त्याज्यास्तत्रापि मान्याःश्वसुरपितृमुखाःसन्ति शेषाः कियन्तो
मिथ्यावादो ममायं मुखरमुखरवः पुंश्चली पुंश्चलोति ।।

पहले तो यह पृथ्वी ही त्रिकोण है। इसमें भी इसका आधा हिस्सा बड़े-बड़े जंगलों, बड़ी-बड़ी नदियों और विशाल-विशाल पहाड़ों से भरा हुआ है। शेष आधे हिस्से में मनुष्य निवास करते हैं, पर उसमें भी आधी संख्या स्त्रियों की है। पुरुषों में कितने ही बालक और वृद्ध ही हैं और रोगी हैं तथा कितने ही योगी। बाकी जो लोग हैं उनमें भी पिता, श्वसुर आदि कितने ही ऐसे मान्य जन हैं जिनका परित्याग करना आवश्यक ही है। ऐसी स्थिति में अब बच ही कितने लोग जाते हैं ? फिर भी मुझे झूठे ही पुंश्छली-पुंश्चली कह कर लोग बदनाम किया करते हैं !

कुलटाओं की विधाता से फरियाद

एते वारिकणान् किरन्ति पुरुषान् वर्षन्ति नाऽम्भोधराः
शैलाः शाद्वलमुद्वमन्ति न सृजन्त्येते पुनर्मानवान् ।
त्रैलोक्ये तरवः फलानि सुवते नैवारभन्ते नरान्
धातः कातरमालपामि कुलटाहेतोस्त्वया किं कृतम् ।।

ये जो बादल हैं, वे भी पानी ही बरसाते हैं पुरुषों को नहीं। ये जो पर्वत हैं वे भी हरी-हरी दूबों को ही पैदा करते हैं मनुष्यों को नहीं। त्रैलोक्य में जितने भी वृक्ष हैं उनमें भी फल ही लगते हैं संभोगभोग्य पुरुष नहीं। हे विधाता! मै इसलिए बड़े दुःख के साथ यह पूछना चाहती हूँ कि आपने कुलटाओं के हित के लिए क्या किया है?

पतिव्रता पतोहू को बदचलन सास की फटकार

वयं बाल्ये बालान्, तरुणिमनि यूनः, परिणतौ
अपीच्छामो वृद्धान् परिणयविधौ नः स्थितिरियम्।
त्वयाऽऽरब्धं जन्म क्षपयितुमनेनैक - पतिना
न मे गोत्रे पुत्रि क्वचिदपि सतीलाञ्छनमभूत्॥

अरी बावरी, हमलोगों ने तो लकड़पन में लड़कों से, जवानी में जवानों से, और वृद्धावस्था में वृद्धों से भी खूब ही भोगविलास किया। कोई रोक-टोक नहीं रही। पर, तू तो ऐसी बेवकूफ निकली कि एक ही पति के साथ सारी जिन्दगी गुजार देना चाहती है। पर, बेटी, हमारे कुल में अभी तक ऐसा कलङ्क नहीं लगने पाया। अब तू चाहे जो कर!

एक भयंकर मूर्खता

दत्त्वा कटाक्षमेणाक्षी जग्राह हृदयं मम।
मया तु हृदयं दत्त्वा गृहीतो मदनज्वरः॥

वह मृगाक्षी कितनी चतुर है कि उसने एक कटाक्ष देकर मेरे हृदय को हर लिया पर मैं ऐसा मूर्ख निकला कि मैंने अपने हृदय को देकर उसके बदले में मदनज्वर ले लिया। हा हन्त!

एक अद्भुत संदेश

स्तनयोर् जघनस्यापि मध्ये मध्यं प्रिये तव ।
अस्ति नास्तीति सन्देहो न मेऽद्यापि निवर्तते ॥

एक विनोदी व्यक्ति ने अपनी प्रियतमा से कहा—प्रिये, तुम्हारे स्तन और जघन के बीच में कमर है या नहीं यह हमारा सन्देह आज भी निवृत्त नहीं होता ।

नगर की सड़कें भारी भयानक

तनु-धन-हर-क्रूर-स्तेनोत्कटां विकटाटवीं
तरति सहसा शौर्योत्सेकात् स्वसार्थवशाज्जनः ।
पुरवरबधू - क्रीडावल्गत् - कटाक्षशताकुले
नगरनिकटे पन्थाः पान्थ स्फुटं दुरतिक्रमः ॥

एक नागरिक एक पथिक को नगर के रास्ते से गुजरते समय उसे सावधान करते हुए कहता है—

हे पथिक ! यदि अपने साथ कुछ साथी हों और अपने में पूरा पराक्रम हो तो मनुष्य शरीर और सम्पत्ति का अपहरण करने वाले क्रूर चोरों से भरे भयानक जगल को भी पार कर सकता है परन्तु नगर के राह से निकल जाना बड़ा ही कठिन काम है जहाँ कि नगर की अलवेली युवतियों के लीलापूर्ण कटाक्ष राहियों पर सौ-सौ बार किया करते हैं ।

स्त्री अकेले ही सब रोगों की दवा

क्व भ्रातश्चलितोऽसि वैद्यकगृहं किं तत्र शान्त्यै रुजां,
किं सा नास्ति सखे तव प्रियतमा सर्वं गदं हन्ति या ।

वातश्चेत्कुचकुम्भमर्दनवशात् पित्तं च वक्त्रामृतात्,
श्लेष्माणं व्यपहन्ति हन्त सुरतव्यापारकेलिश्रमात् ॥

एक किसी रोगी व्यक्ति को कहीं जाते हुए देखकर किसी सहृदय व्यक्ति ने पूछा—

पहला—क्यों भाई, कहाँ की तैयारी है ?

दूसरा—भाई, जरा वैद्यजी के घर जा रहा हूँ।

पहला—क्यों, वहाँ क्या काम है ?

दूसरा—एक बीमारी की दवा करानी है।

पहला—तो आपके पास क्या अपनी प्रियतमा नहीं है जो सारे रोगों को दूर कर देती है ? वह तो कुचकुम्भ के मर्दन से वात को, अधरामृतपान से पित्त को तथा कामकेलि से कफ को दूर कर देती है। फिर किसी वैद्य-डाक्टर के यहाँ दौड़ने की आवश्यकता ही क्या ?

अपने नितम्ब से एक स्त्री की शिकायत

यावत्प्रमाणा रथ्या नितम्ब ! कथं तावान्न जातोऽसि।
येन स्पृश्यते गुरुजनलज्जापसृतोऽपि स सुभगः।

अपने छोटे नितम्ब को कोसते हुए किसी युवती ने कहा—

हे नितम्ब, जितनी लम्बी-चौड़ी सड़क है उतने ही लम्बे-चौड़े तुम क्यों नहीं हुए। यदि ऐसा होता तो जो वह युवक गुरुजनों से लजाने के कारण सड़क पर हमसे कुछ दूर हट जाता है वह जरूर छू जाता अर्थात् उसके शरीर से हमारे शरीर का कम से कम स्पर्श तो हो जाता !

चारो ओर कठिनाई

प्रसीदेति ब्रूयामिदमसति कोपे न घटते
करिष्याम्येवं नो पुनरिति भवेदभ्युपगमः ।
न मे दोषोऽस्तीति त्वमिदमपि च ज्ञास्यसि मृषा,
किमेतस्मिन् वक्तुं क्षममिति न वेद्मि प्रियतमे ॥

अकारणकुपिता प्रियतमा को क्या कह कर मनाया जाय इस विषय में एक हतप्रतिभ पति का अपनी प्रियतमा से ही निवेदन—

प्रियतमे, यदि यह कहूँ कि "अब नाराज न हो, खुश हो जाओ" तो बिना अपराध किये ऐसा कहना भी उचित नहीं प्रतीत होता। "मैं पुनः कभी नहीं ऐसा करूँगा" यदि यह कहूँ तो यह अपराध को स्वीकार करने जैसा हो जाता है। और यदि यह कहूँ कि "मेरा कोई दोष नहीं" तो तुम झूठा ही समझोगी। फिर ऐसी स्थिति में मैं और क्या कहूँ यह मेरी समझ में नहीं आता !

पति के प्रस्थान के समय पत्नी की कठिनाई

मा याहीत्यपमंगलं व्रज सखे स्नेहेन हीनं वचः
तिष्ठेति प्रभुता यथारुचि कुरुष्वेषाऽप्युदासीनता ।
नो जीवामि गते त्वयीति कथनं सम्भाव्यते वा न वा
तन्मां शिक्षय नाथ यत्समुचितं वक्तुं त्वयि प्रस्थिते ॥

पति के परदेश जाते समय स्त्री को पति से क्या कहना चाहिए इस सम्बन्ध में तर्क-वितर्क करती हुई एक स्त्री कहती है—

यदि कहूं कि "मत जाइये" तो यात्रा के समय यह अमंगल माना जायगा। यदि कहूं कि "जाइये" तो यह बिल्कुल स्नेहहीन हो जाता है। यह कहूं कि "रुक जाइये" तो यह शासन समझा जायगा। यदि कहूं कि "जैसी इच्छा हो वैसा कीजिये" तो इसमें उदासीनता आ जाती है। और अन्त में यदि कहूं कि "आपके चले जाने पर मैं जीवित नहीं रह सकती" तो यह भी कैसे कहूं? क्योंकि यह हो भी सकता है, नहीं भी हो सकता है। इसलिए हे नाथ! आपके जाते समय हमें क्या कहना चाहिए यह आप ही बतला दीजिए। प्रवत्स्यत्पतिका नारी की किंकर्त्तव्य-विमूढ़ता का यह कितना हृदयग्राही वर्णन है?

कुलटा का वेदान्त

ब्रह्मैव सत्यमखिलं नहि किञ्चिदन्यत्

तस्मान्न मे सखि परापर-भेद-बुद्धिः।

जारे तथा निजवरे सदृशोऽनुरागो

व्यर्थं किमर्थमसतीति कदर्थयन्ति॥

एक कुलटा अपने दुष्कर्म का वेदान्त की दृष्टि से समर्थन करती हुई अपनी सहेली से कहती है—

सखि! यह सारा संसार ही ब्रह्ममय है। इसमें ब्रह्म के अतिरिक्त और कोई वस्तु है ही नहीं। इसीलिए मैं अपने और पराये का भेद नहीं रखती। चाहे अपना पति हो या दूसरा कोई पुरुष, मैं दोनों में समान ही अनुराग रखती हूं। फिर भी न जाने क्यों लोग मुझे असती (कुलटा-बदचलन) कह कर हमारी शिकायत किया करते हैं?

एक कुलटा की भगवान् से प्रार्थना

जन्मैव मास्तु यदि वा न नितम्बिनीषु
तत्रापि चेदहह नैव कुलाङ्गनासु ।
हा धिग् विधे ! कुलवधूरथ चेद्भवेयं
नैवास्तु वा क्वचन मे मनसोऽनुबन्धः ॥

हे भगवान्, पहली तो हमारी प्रार्थना यही है कि हमारा जन्म ही न हो। पर, यदि जन्म भी हो तो स्त्री का न हो। फिर भी यदि स्त्री का भी जन्म हो तो हो जाय, पर कुलस्त्रियों में कभी न हो। पर यदि दुर्भाग्यवश कुलवधू भी होना पड़े तो ऐसा करना कि कभी हमारे मन पर कोई प्रतिबन्ध न हो। अर्थात् हमारा बिल्कुल स्वच्छन्द जीवन हो, कोई रोक-टोक न रहे।

विरह-वेदना में लिखित पत्र की अशुद्धियाँ

रेफैः क्वापि विवर्जितं क्वचिदनुस्वारैः पुनर्वर्जितं
वर्णाभ्यां क्वचिदेकतामुपगतं क्वापि च्युतं मात्रया ।
निर्मुक्तं क्वचिदक्षरैः पुनरहो त्यक्तं विसर्गैः क्वचित्
लेखः पक्ष्मलचक्षुषः कथयति व्यामोहमग्नं मनः ॥

किसी विरहिणी ने विरहवेदना की अवस्था में अपने परदेशी पतिदेव के पास पत्र लिखा। पत्र पहुँचने पर जब उसे पति ने खोलकर पढ़ा तो ऊपर से नीचे तक पत्र में अशुद्धियों की भरमार थी। इसे देखकर पति ने सोचा कि अवश्य ही इस पत्र की लेखिका विरह की

पीड़ा से आकुल होगी। अन्यथा एक पत्र में इतनी अशुद्धियाँ कभी नहीं होतीं। पति अशुद्धियों का इस प्रकार वर्णन करता है--

कहीं रेफ ही नहीं है तो कहीं अनुस्वार ही छूट गया है। कहीं दो अक्षर एक में ही मिल गये हैं तो कहीं मात्रा ही रह गयी है। कहीं कोई अक्षर ही साफ छूट गया है और कहीं विसर्ग ही नहीं। इस प्रकार हमारी प्रियतमा के मन की उद्विग्नता और आकुलता का यह पत्र ही सबसे प्रबल प्रमाण है। इसके लिए अब अन्य प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

संस्कृत विद्यार्थियों की स्त्रियों के लिए प्यारी तिथि त्रयोदशी

मातस्त्रयोदशि ! शुभे कुलरक्षिणी त्वं
मत्कान्तसंगमविधायिनि सर्वसिद्धे !
भूयास्त्वमेव दश पञ्च च वासराणि
मा भूत् कदाचिदपि पापतिथिर्द्वितीया॥

संस्कृत की शिक्षणपरम्परा में त्रयोदशी तिथि को विशेष रूप में पठन-पाठन वर्जित रहता है। अतएव इस तिथि को विवाहित विद्यार्थी अधिकतर अपने घर जाया करते हैं और इनकी पत्नियों को भी पति-समागम की निश्चित आशा रहती है। इसलिए इस पद्य में एक विद्यार्थी की पत्नी त्रयोदशी तिथि की प्रशंसा करती हुई कह रही है--

हे माता ! त्रयोदशी ! तुम ही हमारे लिए कल्याणकारिणी, हमारे कुल की रक्षिणी, हमारे कान्त के साथ संगम कराने वाली और सर्वसिद्धिदायिनी तिथि हो। तुम हमारे यहाँ से कभी मत जाओ और पक्ष

के पन्द्रहो दिन तुम्हीं बनी रहो। यह पापिन द्वितीया तो कभी न आवे। (क्योंकि द्वितीया तिथि को विद्यार्थी अवश्य विद्यालय चले जाते हैं)।

दूसरे का दोष और दूसरे को कष्ट !

सा बाला वयमप्रगल्भमनसः सा स्त्री वयं कातराः
सा पीनोन्नतिमत् पयोधरयुगं धत्ते सखेदा वयम्।
साऽक्रान्ता जघनस्थलेन गुरुणा गन्तुं न शक्ता वयम्
दोषैरन्यजनाश्रितैरपटवो जाताः स्म इत्यद्भुतम्॥

किसी बाला के रूप-सौन्दर्य से आहत पुरुषों की उक्ति—

बाला तो वह है पर दिल हम लोगों का कमजोर है। स्त्री वह है पर कायर हम लोग हो गये हैं। बड़े-बड़े और ऊँचे-ऊँचे दो स्तनों को वह धारण करती है पर बोझ से हम लोग दबे जाते हैं। भारी-भारी जाघें उसको हैं पर चलने में हम लोगों को कठिनाई है। दोष तो दूसरे का है पर लाचार हम लोग हो गये हैं—यह बड़े आश्चर्य की बात है !

तिर्छी निगाहें साँप से भी भयङ्कर !

आदीर्घेण चलेन वक्रगतिना तेजस्विना भोगिना
नीलाऽब्जद्युतिनाऽहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा।
दष्टे सन्ति चिकित्सिका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थिनो
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य नहि मे वैद्यो न चाऽप्यौषधम्।

किसी युवती की तिर्छी निगाहों से एक बार घायल हुआ कोई पुरुष अपनी घबड़ाहट का वर्णन करते हुए कहता है--

हे भगवान, यदि कोई खूब लम्बा, चंचल, टेढ़ी चाल वाला, तेजस्वी, बहुत मोटा और नीलकमल जैसे काले रंग का महान् सर्प मुझे काट खाय तो वह मेरे लिए अच्छा है और मुझे मंजूर है पर उस युवती के आँखों से घायल होना अच्छा नहीं। क्योंकि साँप के काट लेने पर उसकी मुफ्त दवा करने वाले धर्मार्थी वैद्य चारों ओर मिल सकते हैं पर किसी मुग्धाक्षी के नेत्रों से घायल हो जाने के बाद न मेरे लिए कोई वैद्य मिल सकता है और न कोई औषध ! फिर तो जीना ही कठिन है !

—:※:—

४--प्रकीर्णक



लेखन कला की पराकाष्ठा

चतुरः सखि मे भर्त्ता, यल्लिखति च तत् परो न वाचयति ।
तस्मादप्यधिको मे, स्वयमपि लिखितं स्वयं न वाचयति ।।

किसी समय दो सखियों में अपने-अपने पति की लेखनकला के सम्बन्ध में चर्चा चली और दोनों ने अपने-अपने पति को एक दूसरे से श्रेष्ठ लेखक सिद्ध किया । उनमें से एक सखी ने कहा—

सखि, मेरे, पति लिखने में इतने चतुर हैं कि वे जो कुछ लिखते हैं उसे दूसरा कोई भी नहीं बाँच सकता ।

इस पर दूसरी सखी ने कहा—सखि, इसमें क्या बड़ी विशेषता है । मेरे पति तो तुम्हारे पति से भी अधिक चतुर हैं । क्योंकि वे तो अपना लिखा हुआ अपने ही नहीं बाँच पाते हैं । फिर दूसरों के लेख बाचने की तो बात ही क्या है ।

मछली में ही अमृत का निवास

केचिद्वदन्त्यमृतमस्ति पुरे सुराणां
केचिद्वदन्ति वनिताधरपल्लवेषु ।
ब्रूमो वयं सकलशास्त्रविचारदक्षा
जम्बीरनीर-परिपूरित-मत्स्य—खण्डे ।।

"अमृत कहाँ रहता है" इस विषय पर किसी गोष्ठी में विवाद उठने पर किसी मत्स्यप्रेमी महाविद्वान् ने कहा—

कुछ लोग कहते हैं कि अमृत स्वर्ग में होता है और कुछ विद्वानों का मत है कि अमृत स्वर्ग में नहीं अपि तु स्त्रियों के अधरोष्ठ में रहता है, पर हमारे विचार से यह दोनों मत ठीक नहीं। हम तो सकल शास्त्रों के अध्ययन-अनुशीलन के बाद इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि अमृत मछलियों के उन टुकड़ों में रहता है जो खूब नीबू का पानी देकर चोख-चटकार बनाये जाते हैं।

हवाई बातें

एष वन्ध्यासुतो याति खपुष्प—कृतशेखरः।
मृगतृष्णाम्भसि स्नातः शशश्रृङ्ग - धनुर्धरः ॥

यह देखिये, ये महाशय वन्ध्या के पुत्र, आकाशकुसुम की माला शिर पर पहन कर, मृगतृष्णा के सलिल में स्नान कर और शश (खरहा) के सींघ से बने हुए धनुष को धारण कर कहीं चले जा रहे हैं।

एक विदुषी कन्या द्वारा मूर्ख वर का उपहास

यस्य षष्ठी चतुर्थी स्यात् विहस्य च विहाय च।
अहं कथं द्वितीया स्यात् द्वितीया स्यामहं कथम् ॥

एक बार किसी कन्या का किसी वर से विवाह तय हुआ। इन दोनों में कन्या तो व्याकरण की अच्छी विदुषी थी। पर वर को व्याकरण का कुछ भी ज्ञान नहीं था। जब वर की इस अयोग्यता का कन्या को पता लगा तो उसने ऐसे वर से विवाह का विरोध करते हुए कहा—

जो व्यक्ति रामस्य की भाँति "विहस्य" को षष्ठी समझता है, जो रामाय के समान "विहाय" को चतुर्थी समझता है तथा जो रामं कृष्णं की तरह "अहं कथं" को द्वितीया समझता है, भला ऐसे गँवार व्यक्ति की संगिनी मैं कैसे बन सकती हूं। असम्भव है।

विद्यार्थियों को अब व्याकरण पढ़ने में खूब मन लगाना चाहिए और ऐसी भूलें नहीं करनी चाहिए।

खुजली के चार चरण

प्रथमे सुलु सुलु कृत्वा द्वितीये नखघातनम्।
तृतीये सुखमाप्नोति चतुर्थे हुहुहुः कृता॥

किसी आदमी को जब खुजली होती है तो वह पहले तो उसे हाथ से सहलाता है पर जब इतने से सन्तोष नहीं होता तो फिर नह का प्रयोग करता है और तब तीसरे चरण में उसे बहुत ही आनन्द मिलता है। पर थोड़ी ही देर बाद जब तकलीफ होने लगती है तो वह हुहुहु करने लगता है। इस प्रकार खुजली की इन चार चरणों में समाप्ति होती है।

हुँक्का की निन्दा करने का फल

अफीमनिर्मितं हुक्का ये निन्दन्ति बुधा नराः।
जन्मान्तरेषु कालेषु हूँआँ हूँआँ वदन्ति ते॥

जो लोग समझदार होकर भी अफीम से बने हुक्का के पीने की निन्दा करते हैं, वे लोग हो दूसरे जन्म में सियार होकर "हुआँ हुआँ" किया करते हैं।

शृगालयोनि में जन्म होने का यह कितना वैज्ञानिक कारण है।

पुण्यवान लोगों को ही पूड़ी मिलती है !

गोधूमचूर्णचयचारु—सुधाकराभा
माष - प्रकार - लवणार्द्रक—हिङ्गुगर्भा ।
हैयङ्गवीनह्रद - मज्जन - कोमलाङ्गी
पूड़ी मुखे विशति पुण्यवतां जनानाम् ।।

सुन्दर गोधूम के चूर्ण से बनी हुई, चन्द्रमा के समान गोल-गोल सुहावनी, उड़द, तरह-तरह के नमक, आदी और हींग आदि मसालों से भरी हुई तथा घृत के सरोवर में स्नान करने के कारण अत्यन्त कोमल अंगवाली पूड़ी एवं कचौड़ी किन्हीं पुण्यवान् लोगों के ही मुख को मयस्सर होती है । पापियों को ऐसा सौभाग्य कहाँ ?

एक और त्रिपथगा

क्वचित् हुक्का क्वचित् थुक्का क्वचिन्नासाग्रवर्तिनी ।
इयं त्रिपथगा गङ्गा पुनाति भुवनत्रयम् ।।

जिस प्रकार भगवती भागीरथी गंगा तीन मार्गों से चलने के कारण त्रिपथगा कहलाती हैं और अपने पावन प्रवाहसे तीनों भुवनों को पवित्र करती हैं उसी प्रकार सूर्ती-तमाखू भी तीन मार्गों से चलने के कारण एक दूसरी त्रिपथगा है और व्यापक प्रचार से सारे जगत् को प्रभावित किये हुए है । इनमें से गंगा के तीन मार्ग हैं—विष्णु का चरण, शंकरजी की जटा और हिमालय का एक भाग । इसी प्रकार सुर्ती-तमाखू के तीन मार्ग हैं—एक थुक्का, एक हुक्का और एक सुँघनी ।

मिथिला और अयोध्या का परस्पर हास-परिहास

मिथिला हसत्ययोध्यां त्वं सखि परपूरुषानुरक्तासि ।
मिथिलां हसत्ययोध्या त्वं सखि जनकानुरक्तासि ।।

एक बार मिथिला और अयोध्या में हास-परिहास हुआ। सबसे पहले मिथिला ने अयोध्या पर आरोप लगाते हुए कहा कि हे सखि अयोध्या! तुमको क्या कहा जाय? तुम तो परपुरुष से स्नेह रखने लगी हो। क्या यह अच्छी बात है? इस पर अयोध्या ने मिथिला पर उससे भी अधिक भयङ्कर आरोप लगाते हुए कहा—अरी सखी मिथिला! तू मुझे क्या हँसती है? तूँ तो परपुरुष क्या, स्वयं जनक से ही फँसी हो। सूप हँसे तो हँसे पर चलनी भी हँसे जिसमें सहस्र छेद खुद ही होते हैं।

कौक कौन किस किस प्रकार जाड़ा बिताते है?

आयातं वृश्चिकादौ धनुषि च मकरे घोरतामेति शीतं
कुम्भे नास्त्यस्ति किं वा नहि नहि झषके तत् पुनस्संहरन्ति ।
केचिन्नारीस्तनाभ्यां कतिचन पटजालैः परे वह्निनाऽन्ये
जानुभ्यां केचिदंशार्पित - भुजलतया केऽपि हूहूभिरेव ।।

वृश्चिक के आरम्भ में जाड़े का आरंभ होता है। फिर धन और मकर में भयंयर जाड़ा पड़ने लगता है। कुम्भ की यह हालत होती है

कि उस समय कभी जाड़ा पड़ता है और कभी नहीं भी पड़ता है पर मीन में तो जाड़ा बिलकुल ही नहीं रहता। यह तो जाड़े की स्थिति का सामान्य वर्णन है। पर इस जाड़े को कौन-कौन लोग कैसे बिताते हैं? इस पर अनुभवी कवि कहता है कि कुछ लोग तो स्त्रियों के स्तनों के सहारे, कुछ लोग कपड़े ओढ़ कर, कुछ लोग आग जला कर, कुछ लोग ठेहुन का सहारा लेकर, कुछ लोग दोनों कन्धों पर दोनों भुजाएँ रख कर तथा कुछ लोग हूहूहूहू करके जाड़े की रात बिताया करते हैं।

गङ्गाजी के किनारे धर्म और काम में लड़ाई

स्वर्गापगायास्तरलैस्तरङ्गैः पौराङ्गनानां कुटिलैः कटाक्षैः।
धर्मश्च कामश्च समेत्य तीरे अन्योन्यमायोधनमारभेते ॥

धर्म और काम दोनों ही किनारे आकर गंगाजी के पावन तरङ्गों तथा पुरवासी युवतियों के कुटिल कटाक्षों से आपस में लड़ाई करते हैं। धर्म यदि गंगाजी के तरङ्गों से काम पर प्रहार करता है तो काम स्नान के लिए आयी हुई पुरयुवतियों के कुटिल कटाक्षों से धर्म पर उससे दूना प्रहार करता है।

जाड़े की रामबाण दवा

द्वारं गृहस्य पिहितं शयनस्य पार्श्वे
बह्निर्ज्वलत्युपरि तूलपटी गरिष्ठा।
अङ्गे कलत्रमनुरागवशादुपेतम्
इत्थं करोति किमसौ स्वपतस्तुषारः ॥

घर का दरवाजा बन्द हो, पलङ्ग के पास अंगीठी में आग जल रही हो, शरीर के ऊपर एक वजनदार रजाई पड़ी हो और साथ में स्नेहमयी प्रियतमा भी विराजमान हो तो फिर बड़ा भयंकर भी जाड़ा पड़े तो वह सोने वाले का क्या बिगाड़ सकता है ?

भगवान् दम्भ का अवतार

पाणौ ताम्रघटी कुशः करतले धौते सिते वाससी
भाले मृत्तिलकं सचन्दनरसं न्यस्तैकपुष्पं शिरः ।
दूरात् क्षिप्तपदा नतिदृढतर-व्याश्लिष्टदन्ता गिरः
सोऽयं वञ्चयितुं जगद्भगवतो दम्भस्य देहक्रमः ॥

एक ओर हाथ में तामे का घड़ा, दूसरी ओर कुश, शरीर पर खूब धुले हुए सफेद धोती और चादर, ललाट पर भस्म और चन्दन का लेप, शिर पर रखा हुआ एक फूल, बड़ी तेज और लम्बी डेगवाली गति तथा दाँतों को अच्छी तरह दबा कर निकलती हुई बनावटी वाणी ! यह देखिये, जगत को ठगने के लिए भगवान् दम्भ ने अपना यह सब कैसा मनोमोहक स्वरूप बनाया है ।

दम्भ का यह कैसा सटीक वर्णन है जिसके चित्र आज भी कभी-कभी धार्मिक स्थानों में दृष्टिगोचर हो जाते हैं ।

पुरुषार्थहीनों के लिए धर्म ही सहारा

कृषि - वाणिज्य - हीनानां दीनानां बुद्धिपौरुषैः ।
धर्मवादं विना केन भवेदुदर—पूरणम् ॥

जिनके पास न खेती है और न व्यापार और जो बुद्धि एवं पुरुषार्थ में भी अत्यन्त दुर्बल हैं ऐसे लोग यदि धर्म की बातें न करें तो भला उनका पेट कैसे भरें ?

गोरस का यह भयङ्कर अभाव !

घृतं न श्रूयते कर्णे दधि स्वप्ने न दृश्यते ।
मुग्धे दुग्धस्य का वार्ता तक्रं शक्रस्य दुर्लभम् ॥

ससुराल में आने पर जब किसी वधू ने भोजन के प्रसंग में गोरस की चर्चा चलाई तो उसके पति ने हँसते हुये कहा—

अरी बाबरी, यहाँ गोरस की प्रतीक्षा में मत बैठ। यहाँ तो यह हालत है कि घृत शब्द कानों तक सुनाई नहीं पड़ता और दही का स्वप्न में भी दर्शन नहीं होता। फिर दूध की तो बात ही क्या ? और तक्र तो यहाँ इतना दुर्लभ है कि वह शक्र को भी नहीं मिलता। फिर सामान्य लोगों की कौन बात करे ?

तात्पर्य यह है कि दूध, दही, घी और मट्ठे की लालच छोड़कर जो कुछ अन्न मिल जाता है, उसी पर सन्तोष कर।

दूर्जन ही प्रथम वन्दनीय

दुर्जनं प्रथमं वन्दे सज्जनं तदनन्तरम् ।
मुख - प्रक्षालनात् पूर्वं गुदप्रक्षालनं यथा ॥

सब लोग सज्जनों की ही बन्दना करते हैं, दुर्जनों की कोई वन्दना नहीं करता। परन्तु एक महाशय न केवल दु ेन की वन्दना ही करते

हैं अपितु सज्जनों से पहले उसे स्थान देते हैं। परन्तु इसका औचित्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने प्रमाण भी अकाट्य ही ढूँढ़ रखा है। उनका तर्क है कि मुखप्रक्षालन के पूर्व गुदप्रक्षालन करना ठीक समझा जाता है तो सज्जन से पहले दुर्जन की वन्दना क्यों नहीं ठीक हो सकती? मालूम पड़ता है कि लेखक महाशय का किसी अच्छे दुर्जन से पाला पड़ा हुआ है!

संसार में कुछ भी असंभव नहीं

भ्रातः पान्थ कुतो भवान्? नगरतो, वार्ता नवा वर्तते?

बाढं, ब्रूहि, युवा पयोदसमये त्यक्त्वा प्रियां जीवति।

सत्यं जीवति, जीवतीति कथिता वार्ता मयापि श्रुता

विस्तीर्णा पृथिवी जनोऽपि विविधः किं किं न संभ्याव्यते।।

एक किसी व्यक्ति ने किसी राही से पूछा—

व्यक्ति—कहिये भाई, कहाँ से आ रहे हैं?

राही—नगर से आ रहा हूँ।

व्यक्ति—कोई नयी बात है?

राही—अवश्य है।

व्यक्ति—कहिये, कहिये, क्या नयी बात है?

राही—नयी बात यही है कि इस बरसात के समय में भी एक बिना स्त्री के भी जीवित है।

व्यक्ति—क्या सचमुच जी रहा है? आश्चर्य है?

राही—मैंने भी देखा तो वहीं पर लोगों के मुंह से सुना है कि अभी जी रहा है।

व्यक्ति—तो कोई असम्भव नहीं। पृथ्वी बड़ी लम्बी-चौड़ी है और लोग भी तरह-तरह के हैं। इसलिए क्या नहीं हो सकता यह कहना मुश्किल है।

गणिका और गणक एक समान

गणिका-गणकौ समानधर्मौ निजपञ्चाङ्गनिदर्शकावुभौ।
जनमानसमोहकारिणौ विधिना वित्तहरौ विनिर्मितौ॥

गणिका और गणिक (ज्योतिषी) ये दोनों ही एक समान होते हैं। क्योंकि ये दोनों ही लोगों को अपना-अपना पंचांग दिखाते हैं और लोगों के मन को मुग्ध किया करते हैं। विधाता ने इन दोनों को दूसरों का धन हरण करने के लिए बनाया है! कितनी सटीक तुलना है?

वाग्भट की भूल

विस्मृतं वाग्भटेनेदं तुलस्याः पठता गुणान्।
विश्वसम्मोहिनी वित्तदायिनीति गुणद्वयम्॥

आयुर्वेद के प्रसिद्ध आचार्य वाग्भट ने अपने ग्रन्थ में तुलसी के बहुत गुण लिखे हैं पर दो गुणों को वे भी भूल गये हैं। एक तो यह कि तुलसी दुनिया को खूब मोहती हैं और दूसरे वह रुपया-पैसा भी खूब दिलाती हैं। तभी तो तुलसी की माला धारण करने वाले बहुत से साधु-सन्त लोगों को भरमाया करते हैं और उनसे खूब रुपये-पैसे भी वसूल किया करते हैं।

वैद्यों से एक कौड़ी भी मिलना मुश्किल

नटोऽपि दद्याद् गणकोऽपि दद्यात्
सम्प्रार्थितः पाशुपतोऽपि दद्यात् ।
वैद्यः कथं दास्यति याचमानो
यो मर्तुकामादपि हर्तुकामः ।

यदि माँगा जाय तो नट भी कुछ दे सकता है और गणक भी कुछ दे सकता है। और यदि विशेष रूप से माँगा जाय तो कुछ औघड़ तक भी दे सकता है। पर बहुत याचना करने पर भी वैद्य किसी को क्या दे सकता है जो मरते हुए आदमी से भी कुछ हाथ ही लगाना चाहता है, उसे भी छोड़ना नहीं चाहता !

वैद्य को आश्चर्य

चितां प्रज्वलितां दृष्ट्वा वैद्यो विस्मयमागतः ।
नाहं गतो न मे भ्राता कस्येदं हस्तलाघवम् ॥

कहीं पर किसी चिता को जलती हुई देखकर किसी वैद्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने सोचा कि इस रोगी के पास तो दवा करने के लिए न मैं गया था और न मेरा भाई ही गया था। फिर यह किसके हाथ की सफाई है कि वह इतनी जल्दी चिता पर आ गया !

नैयायिकों से कविजन ही अच्छे

नैयायिकानां मलिनाम्बराणां जनुर्गतं रासभचिन्तयैव ।
तथापि वेश्यास्तव-सन्निवेशस्तोतुः कवेः कोऽपि विशेष एव ॥

नैयायिकों का प्रायः सारा जीवन रासभ (गदहा) की ही चर्चा में बीतता है। इसके बिना वे कोई बात ही नहीं कर सकते। ऐसी स्थिति में वेश्याओं के स्तन की रूपरेखा का वर्णन करने वाले कविजन नैयायिकों से तो कम से कम अच्छे हैं ही। कहाँ पशु और कहाँ मनुष्य!

वैद्य ने यमराज का कार्यभार सँभाला!

वैद्यनाथ नमस्तुभ्यं क्षपिताशेषमानव।
त्वयि संन्यस्तभारोऽयं कृतान्तः सुखमेधते ॥

किसी व्यक्ति ने किसी वैद्य से कहा—

वैद्यराज! जब से आपने यमराज का कार्यभार सम्भाला है तब से वे बड़े आराम से रहते हैं। क्योंकि अब मनुष्यों के प्राणहरण का महान् कार्य तो आप ही कर रहे हैं! एतदर्थ आपको बार-बार नमस्कार है!

शिष्यों के तीन विशिष्ट गुण

अगतित्वमतिश्रद्धा ज्ञानाऽभ्यासेन तृप्तता।
त्रयः शिष्यगुणा ह्येते मूर्खाचार्यस्य भाग्यजाः ॥

पठनीय विषय में गति न होना, अध्यापकों में अत्यधिक श्रद्धाभाव रखना तथा थोड़ा पढ़ने से ही सन्तुष्ट हो जाना ये तीन शिष्यों के विशेष गुण हैं जो मूर्ख आचार्य के भाग्य से ही मिलते हैं! अर्थात् वे गुरु बड़े भाग्यवान् होते हैं जिनके शिष्यों में ये तीनों गुण विद्यमान रहते हैं।

मठ में भयङ्कर भगदड़ !

भुक्त्वा माषमयान् अपूपवटकान् आध्मायमानोदरे
फट् फट् फाट् इति पायवीयपवने योगीश्वरे मुञ्चति ।
उड्डीनं विहगैर्घटैर्निपतितं दोलायितं भित्तिभिः
शिष्यैर्धावितमर्भकैर्निपतितं कोलाहलोऽभून्मठे ॥

एक दिन किसी मठ में उड़द के बड़ा पकौड़ी आदि विविध पकवान बने और उन्हें मठ के लोगों ने खूब उड़ाया। निदान जब मठ के महन्थ जी का पेट फूलने लगा और फट्-फट् की आवाज के साथ हवा खुलने लगी तो मठ में भयंकर कोलाहल मच गया। आवाज बम फूटने की तरह इतने जोरों से हुई कि पक्षी उड़-उड कर भागने लगे, घड़े वगैरह इधर-उधर लुढ़क गये, दीवालें डोलने लगीं, शिष्य दौड़ने लगे, और छोटे-छोटे बच्चे गिर-गिर पड़े और इस प्रकार मठ में तहलका-सा मच गया।

शङ्करजी के घर चोरी का फल

चोरः कामरिपोर्गृहं निशि गतः शूलं कपालं हरन्
बीजं धूर्तफलस्य तण्डुलधिया नीत्वा पुनर्भुक्तवान् ।
व्यावल्गन् प्रचलन् स्खलन् परिपतन् मुह्यन् विघूर्णन् हसन्
अट्टाट्टध्वनिमुक्त—मौलिकुसुमं स्वर्वेश्यया हस्यते ॥

कोई चोर किसी दिन रात में शंकरजी के घर में घुसा और उनका त्रिशूल एवं खप्पर चुरा लिया। इसके साथ ही उसने चावल समझ कर

उनके घर में रखे हुए धतूर के बीजों को भी ले लिया और दो-चार दाने मुँह में भी डाल लिये। फिर क्या पूछना था! चोरी करने का मजा आ गया। अब कहीं लुढ़कते हुए, कहीं दौड़ते हुए, कहीं गिरते हुए, कहीं फिसलते हुए, कहीं बेहोश होते हुए, कहीं चक्कर खाते हुए और कहीं पागलों की तरह हँसते हुए जब चोर भागने लगा तो वहाँ की वेश्याएँ इतने जोर से अट्टहास करने लगीं कि उनके मस्तक में लगे हुए फूल गिर-गिर पड़े!

भिक्षुकों का यह आचरण!

भिक्षो मांसनिषेवणं प्रकुरुषे किं तेन मद्यं विना

मद्यं चापि तव प्रियं प्रियमहो वाराङ्गनाभिः सह।

तासामर्थरुचिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्येण वा

चौर्य-द्यूत-परिग्रहोऽपि भवतः भ्रष्टस्य कान्या गतिः॥

किसी भिक्षु को मांस खाते हुए देखकर किसी को बहुत ही दुःख और आश्चर्य हुआ और उसने भिक्षु से इस अनर्थ का कारण पूछा तो भिक्षु ने इसका और भी आश्चर्यजनक उत्तर दिया। प्रस्तुत श्लोक में यही प्रश्नोत्तर उल्लिखित है—

प्रश्न—अजी, आप भिक्षु होकर मांस भी खाते हैं?

उत्तर—जी हाँ, मांस तो खाता हूँ पर बिना मद्य के अच्छा नहीं लगता।

प्रश्न—तो फिर आप मद्य का भी सेवन करते हैं?

उत्तर—जी हाँ, मैं मद्य का भी सेवन करता हूँ पर आनन्द तभी आता है जब उसके साथ वाराङ्गनाएँ भी रहती हैं।

प्रश्न—धन्य हो महाराज ! पर वाराङ्गनाएँ तो बिना द्रव्य के नहीं मिलतीं, आपको द्रव्य कहाँ से मिलता है ?

उत्तर—जूआ खेलने से या चोरी करने से।

प्रश्न—अच्छा, तो आप जुआ भी खेलते हैं और चोरी भी करते हैं।

उत्तर—क्या करूँ ? जब आरम्भ में ही भ्रष्ट हो गया तो बाद में सुधरने की क्या आशा ? अब तो सब कुछ करने लगा हूँ।

विधाता की उच्छृंखलता

अयाचितः सुखं दत्ते याचितश्च न यच्छति।
सर्वस्वं चापि हरते विधिरुच्छृंखलो नृणाम् ॥

जो सुख की याचना नहीं करता उसे सुख देता है और जो याचना करता है उसे सुख नहीं देता। इतना ही नहीं बल्कि उसके पास जो कुछ रहता है उसे भी हरण कर लेता है। यह सब देखते हुए यह मानना पड़ेगा कि मनुष्यों के लिए विधि जैसा कोई उच्छृङ्खल व्यक्ति नहीं !

बिगड़ी आदत देवता की भी नहीं सुधरती

नादत्ते भसितं सितं सचिव ! ते कर्पूरपूरं स्मरन्
कौपीनेऽपि च कुप्यति प्रभुरसौ शश्वद् दुकूलानि ते।
दिग्धो दुग्धरसैर्जलेषु विमुखः श्रीवास्तुपाल त्वया
कर्पूरागुरुमोदितः पशुपतिर्नो गुग्गुलं जिघ्रति ॥

एक बार महामन्त्री वास्तुपाल ने किसी गाँव के शिवमन्दिर में जाकर राजोचित बहुमूल्य वस्तुओं से शिवजी की पूजा की, तो उससे शिवजी की आदत ही बिगड़ गयी और तब से वे साधारण पूजा-सामग्री को फूटी आँख से भी नहीं देखते। इसी बात को कभी मन्दिर के पुजारियों ने जाकर वास्तुपाल से इस प्रकार कहा—

महामन्त्रिन्! क्या कहें, आपने तो एक दिन के लिए जाकर हमारे शिवजी की आदत ही बिगाड़ डाली। क्योंकि आपने कपूर के चूर्ण से जो उनका लेपन किया, उसका स्मरण करते हुए वे अब साधारण भस्म को ग्रहण ही नहीं करते, चाहे वह कितना भी सफेद क्यों न हो। और आपने जो उन्हें रेशमी वस्त्र पहनाया था उसकी चर्चा करते हुए वे अब लङ्गोटी को देखते ही बिगड़ जाते हैं। फिर आपने पानी के बदले जो दूध से स्नान कराया था इससे वे अब जल को देखते ही मुँह फेर लेते हैं। इसके अतिरिक्त आप के कपूर और अगुरु के धूप से वे इतने प्रसन्न हुए कि अब वे गुगुल को सूँघते भी नहीं।

कौआ और खल की समानता!

पर-क्षत-क्षोद-विनोद-लीलाः खलाश्च काकाश्च यदृच्छयैव।
पात्रेऽप्यपात्रेऽपि विगर्हणीयां वाचं च विष्टां च समुत्सृजन्ति॥

दूसरों के घाव पर अधिक चोट करने वाले खलजनों और कौओं का यह स्वभाव ही होता है कि चाहे योग्य स्थान हो या अयोग्य, वे जहाँ कहीं भी अपनी दुष्ट वाणी का और विष्ठा का उत्सर्ग कर ही देते हैं। देखा जाता है कि खल लोग अच्छे आदमियों को भी भला-बुरा कह बैठते हैं और कौआ देवताओं के मस्तक पर भी बीट कर देता है!

आम से सभी फलों का भयङ्कर डाह

आकर्ण्याम्रफलस्तुतिं जलमभूत्तन्नारिकेलान्तरे
प्रायः कण्टकितं तथैव पनसं जातं द्विधोर्वारुकम् ।
आस्तेऽधोमुखमेव कादलफलं द्राक्षाफलं क्षुद्रतां
श्यामत्वं बत जाम्बवं गतमहो मात्सर्यदोषादिह ।।

आम के फलों की प्रशंसा जब चारों ओर होने लगी तो उसके डाह के मारे सभी अन्य फलों की हालत बिगड़ गयी। नारियल के पेट में पानी भर आया, कटहल के सारे शरीर पर काँटे निकल आये, ककड़ी दो टूक हो गयी, केले ने लज्जा के मारे अपना मुँह लटका लिया, दाख-किसमिस छोटे-छोटे हो गये और जामुन को तो इतनी डाह हुई कि वह बिलकुल काला हो गया।

जब फलों में इतना डाह तो मनुष्यों का क्या पूछना !

कृपणता की यह पराकाष्ठा !

एकैकातिशयालवः परगुणज्ञानैकवैज्ञानिकाः
सन्त्येके धनिनः कलासु सकलास्वाचार्यचर्याचणाः ।
अप्येते सुमनोगिरां निशमनात् बिभ्यत्यतो श्लाघया
धूते मूर्धनि कुण्डले कषणतः क्षोणे भवेतामिति ।।

संसार में बहुत से धनी प्रायः मूर्ख ही हैं पर कुछ धनी व्यक्ति ऐसे भी हैं जो एक में एक बढ़ कर दूसरों के गुणों को समझने में चतुर हैं तथा स्वयं भी समस्त कलाओं में पारंगत हैं। फिर भी आश्चर्य है कि ये लोग विद्वानों की वाणी सुनने से डरा करते हैं। इसलिए कि विद्वानों

की प्रशंसा में शिर हिल जाने पर कहीं इनके कानों के कुण्डल हिलने से कुछ क्षीण न हो जायँ !

चाँद्नी की अद्‌भुत करामात

मुग्धा दुग्धधिया गवां विदधते कुम्भानधो बल्लवाः
कर्णे कैरवशंकया कुवलयं कुर्वन्ति कान्ता अपि ।
कर्कन्धूफलमुच्चिनोति शबरी मुक्ताफलाऽकांक्षया
सान्द्रा चन्द्रमसो न कस्य कुरुते चित्तभ्रमं चंद्रिका ।।

जब रात में चन्द्रमा की गाढ़ी चाँदनी के कारण चारों ओर सफेदी ही सफेदी छा जाती है तो किस-किस का चित्त भ्रम में नहीं पड़ जाता ? बेचारे भोले-भाले ग्वाले गिरता हुआ दूध समझ कर गायों के स्तनों के नीचे घड़ा लगा देते हैं। स्त्रियाँ कुवलय को कैरव समझ कर कानों में लगाने लगती हैं तथा कोई शबरी मुक्ताफल के लोभ से बेर के फलों को चुगने लगती है। इस प्रकार सब लोग चाँदनो के चक्कर में पड़ कर अजीब-अजीब काम करने लगते हैं।

जैसा सवाल वैसा जबाब

(१)

किसी समय कोई युवती एक ही सूत में काँच, मणि और कांचन इन तीनों को पिरो रही थी। इसे देखकर किसी पुरुष ने कहा—

काचं मणिं काञ्चनमेकसूत्रे ग्रथ्नासि बाले किमिदं विचित्रम् ।

अर्थात्—हे बाले ! तुम मणि, काञ्चन और काच इन तीनों उत्तम

मध्यम और निकृष्ट वस्तुओं को एक ही सूत में गूथ रही हो, यह कितनी विचित्र और वेमेल बात है ?

इस पर युवती ने तत्काल उत्तर दिया—

विशेषवित् पाणिनिरेकसूत्रे श्वानं युवानं मघवानमाह ॥

अर्थात्—मैं तो एक नासमझ स्त्री हूँ पर बहुत बड़े विद्वान् पाणिनि ने भी तो एक ही सूत्र में श्वा (कुत्ता) युवा (जवान) और मघवा (इन्द्र) इन तीनों को एक साथ रख दिया है !

टिप्पणी—अष्टाध्यायी में पाणिनि का एक सूत्र "श्वयुव मघोनामतद्धिते" है जिसमें उपर्युक्त तीनों पदों का एक साथ उल्लेख किया गया है।

(२)

किसी समय कोई युवती कमर पर घड़ा लिए हुए कहीं जा रही थी। इसी बीच वहाँ कोई एक तरुण और सुन्दर पुरुष जा पहुँचा तो उसकी ओर वह स्त्री निहारने लगी। इस पर उस पुरुष ने कहा—

किं मां निरीक्षसि घटेन कटिस्थितेन
वक्त्रेण चारु-परिमीलित-लोचनेन।
अन्यं निरीक्ष पुरुषं तव भोगयोग्यं
नाहं घटाङ्कितकटीं प्रमदां स्पृशामि ॥

अरी बावरी ! कमर पर घड़ा लेकर क्या मेरी ओर बड़ी मीठी और कनखी भरी नैनों से निहार रही हो ? तुम अपने भोग के योग्य किसी और ही पुरुष को ढूढ़ो। मैं तो कमर पर घड़ा रखने वाली स्त्री को छूता तक नहीं हूँ फिर भोग-विलास आदि की तो बात ही क्या ?

पुरुष की इस मर्मभरी बात को सुन कर स्त्री ने भी उसे उसी प्रकार कस कर कोड़ा लगाया और कहा—

सत्यं ब्रवीषि मकरध्वजबाणपीड
नाहं त्वदर्पितदृशा परिचिन्तयामि ।
दासोऽद्य मे विघटितस्तव तुल्यरूप:
सोऽयं भवेन्नहि भवेदिति मे वितर्क: ॥

अर्थात्—भले आदमी, मैं अच्छी तरह समझ गयी कि तुम कामदेव के बाणों से बुरी तरह घायल हो। तभी तो ऐसी बातें कर रहे हो। पर मैं सत्य कहती हूं कि तुम्हारे रूप को देखने की दृष्टि से मैं तुम्हारी ओर बिलकुल नहीं निहार रही हूं। असल बात यह है कि तुम्हारे ही जैसा मेरा एक नौकर था जो आज कहीं गायब हो गया है। सो यह वही नौकर है या दूसरा कोई है, इस तर्क-बितर्क में मैं तुम्हारी ओर इतने ध्यान से देख रही थी।

दन्ता वदन्ति जिह्वे त्वां दशाम: किं करिष्यसि ।

एक बार दाँतों और जीभ में लड़ाई हो गयी। इस पर सब दाँतों ने मिलकर जीभ से पूछा कि अगर हम सब मिलकर तुम्हें काटने लगेंगे तो तुम क्या कर सकोगी ? तब जीभ ने तत्काल उत्तर दिया—

दांत और जीभ की लड़ाई

एकमेव वचो वच्मि नूनं सर्वे पतिष्यथ ॥

अगर तुम लोग अपनी अधिक संख्या समझ कर बहुत उपद्रव करोगे तो मैं एक ही कोई ऐसी बात बोल दूंगी कि तुम सब लोग मार खा-खा कर गिर जाओगे। एक भी नहीं बच पाओगे। खबरदार !

श्लोक तथा आधारग्रन्थसूची

अगतित्व०	कलिविडम्बनम् ६
अज्ञोऽसि	स्तुतिकुसुमाञ्जलि
अत्तुम्	पञ्चतन्त्र, १·१७५
अन्नम्	रसकल्पद्रुम ३·५२५
अन्तकोऽपि	कविविडम्बनम् ५१
अन्यग्राम०	गाथासप्तशती ७·८७
अफीम	(जगन्नाथपुर्यांश्रुतम्)
अमी तिला	शार्ङ्गधर पद्धति ११८६
अयाचितः	सुभाषितरत्नभाण्डागार
अवतार०	,,
अस्मिन्	सुभाषितरत्नाकर
अन्धं	,,
असारे	सुभाषितरत्नभाण्डागार
अयं पटः	मृच्छकटिकम् २·००
अयं पटो	सुभाषितरत्नभाण्डागार
अहं च	सुभाषितरत्नभाण्डागार
आकर्ण्या०	सुभाषितरत्नभाण्डरगार
आखण्डलः	रसकल्पद्रुम ३·५५८
आत्मीयं	रसमञ्जरी
आदिमध्या०	सुभाषितरत्नभाण्डागार
आदीर्घेण	श्रृङ्गारतिलक ८६
आपाण्डुता	रसकल्पद्रुम
आयते	(आन्ध्रयात्रायां श्रुतम्)
आयुः प्रश्ने	कलिविडम्बनम् ८६
आहारे	सुभाषितरत्नभाण्डागार
इदमनु	श्रृङ्गारशतकम् २८
उच्चैरध्य०	सुभाषितावलिः २३७८
उच्चैरुद्घु०	कलिविडम्बनम् ३
उच्चैरेष	भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह ४७८
उन्निद्र०	शार्ङ्गधर पद्धति
उपकृतं	काव्यप्रकाश
उरःस्थ	(केरलयात्रायां श्रुतम)
उष्ट्रकस्य	समयोचितपद्यमालिका
ऊर्णा	शार्ङ्गधरपद्धति १२१०

एका भार्या	उद्भटसागर ३०·३
एकैका	सुभाषितावलिः ४६०
एतस्य	विद्याकरसहस्रकम्
एते	सुभाषितरत्नभाण्डागार
एष	सुभाषितरत्नभाण्डागार
एष्टव्या	डमरुकम् ११
कस्तूरिका	नराभरणम् २४७
कलंकी	आर्याशतकम् १०१
कस्मै किं	सुभाषितरत्नभाण्डागार
काचं	सूक्तिमञ्जरी
का नाम	सुभा षतावलि २३०६
का का	सुभाषितरत्नभाण्डागार
काव्यं	शान्तिशतकम् २·४
काव्यंकरोषि	सूक्तिमुक्तावलि ५·४
कुरुते	नराभरणम् ४३
किं मां	
केचिद्	
केनात्र	शार्ङ्गधरपद्धति १००३
कौपीनं	कलिविडम्बनम् ८६
क्रोधस्तेज	रसकल्पद्रुम १·३·२८
क्वचित्	
क्व भ्रातः	शृंगारतिलक १३
क्षपां	सुभाषितरत्नभाण्डागार
खल्वाटो	नीतिशतकम् ९१
खुराघातैः	सुभाषितरत्नकोष
गणिका	सुभाषितरत्नभाण्डागार
गन्धः	चाणक्यनीति ६·३
गृहः	रसकल्पद्रुम ३·५·४६
गृहिणी	कलिविडम्बनम् ४१
गुरोर्गिरः	लटकमेलकम् २०४
गोधूम	विद्याकरसहस्रकम्
गौरी	सुभाषितरत्नभाण्डागार
ग्रामे	डमरुकम् ३१
घटं	सुभाषितरत्नभाण्डागार
घृतं	,,
चतुरः	,,
चन्दन०	,,
चितां	प्रबन्धपञ्चशती १·७४·२
चोरः	
छेदश्चन्दन०	नीतिसार ६
जाता	नराभरणम् २६०
जन्मैव	सुभाषितरत्नभाण्डागार
जिह्वे	

ज्ञानाम्बु०	उद्भटसागर
झटिति	श्रृङ्गारतिलकम् ६
टका	
तनुः	
तरुणं	
दन्ता	
तावत्	कलिविडम्बनम् ७२
तीरे	भामिनीविलास २.२०
दर्शेन्दु०	रसकल्पद्रुम ३.५.१२
दुर्जनं	सुभाषितरत्नभाण्डागार
दृशा	विद्धशालभंजिका
द्वारं	सुभाषितावलिः १८५६
न केशेषु	सुभाषितरत्नाकर
नटोऽपि	सुभाषितरत्नभाण्डागार
ननान्दा	सुभाषितरत्नाकर
नपुंसक	सुभाषितावलिः १२३१
न भेतव्यं	कलिविडम्बनम्
न विवा०	रसकल्पद्रुम
नाक्षराणि	नैषधचरित १.२
नाथे कृत०	उद्भटसागर २.८
नादत्तो	प्रबन्धकोश
नासाथू०	देशोपदेश ८.४२
निद्राति	रसकल्पद्रुम १.३.६६
नूनं हि	भर्तृहरिसुभभाषित-संग्रह ११८
नृत्यति	सुभाषितरत्नभाण्डागार
नृत्यन्ति	रसकल्पद्रुम ३,५,८३
नैयायिक०	सुभाषितरत्नभाण्डागार
परक्षत०	
पणिनेर्न	रसकल्पद्रुम ६.५.७५६
पाणी	सुभाषितरत्नभाण्डागार
पिशुनेभ्यो	नर्ममाला १.५१
पीठाः	सुभातिरत्नभाण्डागार
पीठी०	शार्ङ्गधरपद्धति ७०२३
पृथ्वी	सुभाषितरत्नभाण्डागार
पोता०	रसकल्पद्रुम १.३.२३
प्रथमे	(उत्कलयात्रायांश्रुतम्)
प्रसीदेति	सुभाषितावलिः १६०२
बिडौजाः	सुभाषितरत्नभाण्डागार
बुभुक्षितै०	भर्तृहरिसुभाषित-संग्रह ६२१
ब्रह्मैव	सुभाषितरत्नभाण्डागार
भट्टिर्नष्टो	भोजप्रबन्ध
भाण्डानि	रसकव्पद्रुम ३.५.१८

निजानपि	सुभाषितरत्नभाण्डागार
भिक्षू०	भोजप्रबन्ध
भिक्षो	सुभाषितावली
भुक्त्वा	
भैषज्यं	कलिविडम्बनम् २५
भ्रातः	कुवलयानन्द १७१
भ्रातृणां	सुभाषितावलि २८६७
मनसः	,, ,,
मर्कटस्य	सुभाषितरत्नभाण्डागार
मलिनैः	सुभाषितरत्नभाण्डगार
महाराज	भोजप्रन्ध ८३
मात०	रसकल्पद्रुम ३, ५, ७३
मा याही०	सुभाषितावलि १६४५
मालती	श्रृंङ्गारशतक २४
मिथिला	सुभाषिनरत्नाकर
मुग्धा	साहित्यदर्पण १०,३६
मूर्खत्वं	उद्भाटसागर ३.३११
मूर्तिमृंदा	,,
मृगतृष्णा०	आगमडम्बरम् ३.१५
मेरुः	सुभाषितरत्नभाण्डागारे
यत्र भार्या	कलिविडम्बनम् १००
यथा यथा	भोजप्रबन्ध
भार्या	कलिविडम्बनम्
यस्य किञ्चिद्	समयोचितपद्यमालि०
यस्य षष्ठी	सुभाषितरत्नभाण्डागार
लक्ष्मीवन्तो	,, ,,
वक्त्रे	,, ,,
वयं बाल्ये	सदुक्तिकर्णामृतम् ५३६
वस्त्रेण	
वाच्यतां	कलिविडम्बनम्
वाट्यां	रसकल्पद्रुन ६.५.१.७
विदितं	भोजप्रबन्ध
विद्वान्	देशोपदेश ८.४१
विस्मृतं	कलिविडम्बनम् ८५
वृद्धोक्षः	
वैद्यराज	सुभाषितावलि २३१६
वैयाकरण	सुभाषितावलि २३३३
यां चिन्त	भर्तृहरिसुभाषितसंग्रह
यावत्	
रत्नवनम्	रसकल्पद्रुम ६,५,१६६
रसास्वा०	सुभाषितरत्नभाण्डागार
राजन्	सुभाषितरत्नभाण्डागार
रात्रौ	भोजप्रबन्ध

यदा	शान्तिशतकम् २.०
यद्यपि	सुभाषितरत्नभाण्डागार
रोषोऽपि	आर्यासप्तशती
लक्ष्मि	सुाषितरत्नभाण्डागार,
शम्भु०	श्रृङ्गारशतक
श्वसुर०	सनयोचितपद्यमालिका
षष्ठीत०	उद्भटसागर
सत्यं	
सदा जप०	कलिविडम्बनम्
सदाऽतुष्ट	नराभरणम् ५४
सर्वंकाल०	कलिविडम्बनम् १७
सव्याधेः	सदुक्तिकर्णामृतम् ६०५
साधु साधु	
सा बाला	अमरुशतकम् ३०
साम०	शार्ङ्गधरपद्धति ४०६२
रेफैः	रसपारिजात ५. ४८
रे रे	प्रबन्धपञ्चशती २.३६५,१
सुवर्ण०	सुभाषितसुधानिधि
स्तनयोरू	
स्थानं नास्ति	रसकल्पद्रुम ६५,१७६
स्वकीयं	कुवलयानन्द १२०
स्ववर्गे	
स्वयं पश्च०	सुभाषितरत्नभाण्डागार
स्वयं महे०	,, ,,
स्वर्गाय०	
हंस प्र०	विक्रमोर्वशी ४·३३
हरो हि०	
हलमगु	काव्यमीमांसा १७,१
हस्तं	
हारं	भामिनीविलास १६४

●

सूचना—प्रस्तुत सूची में कुछ श्लोकों के आधार ग्रन्थों का ठीक पता न लगने के कारण उसका स्थान रिक्त है। पाठकों से निवेदन है कि जिन्हें इन श्लोकों के आधार-ग्रन्थों का पता हो, वे सूचित करने की कृपा करेंगे।